नवकलेवर और रथयात्रा

लेखक:
अशोक पाण्डेय

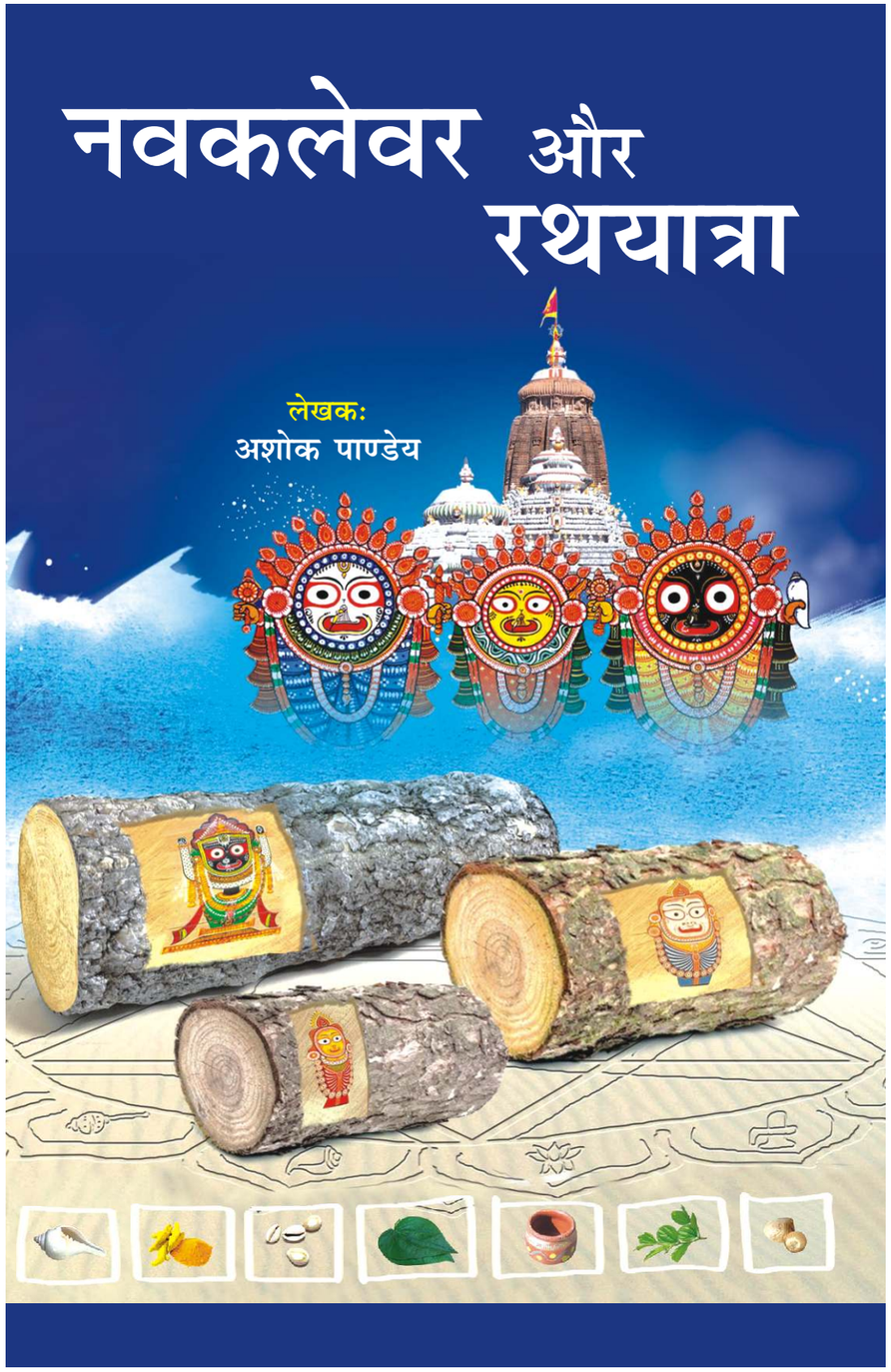

पुरी धाम के गोवर्द्धन पीठ के
पीठाधीश्वर
एवं
145वें शंकराचार्य
जगतगुरु परमपाद स्वामी
निश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज

पाश्चात्यजगत्के नववर्षके उपलक्ष्यमें उद्बोधन एवम् सन्देश

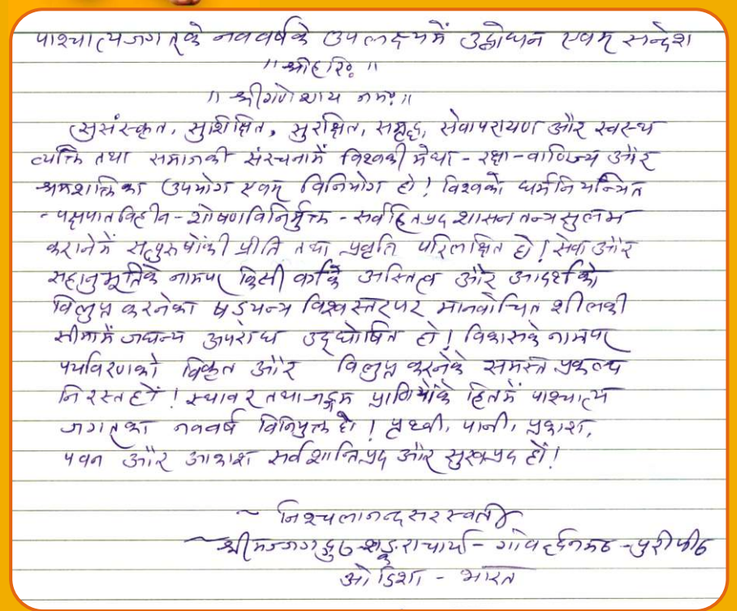

॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, समृद्ध, सेवापरायण और स्वस्थ व्यक्ति तथा समाजकी संरचनामें विश्वकी मेधा - रक्षा - वाणिज्य और श्रमशक्तिका उपयोग एवम् विनियोग हो! विश्वको धर्मनियन्त्रित - पक्षपातविहीन - शोषणविनिर्मुक्त - सर्वहितप्रद शासनतन्त्र सुलभ करानेमें सत्पुरुषोंकी प्रीति तथा प्रवृत्ति परिलक्षित हो! सेवा और सहानुभूतिके नामपर किसी वर्गके अस्तित्व और आदर्शको विलुप्त करनेका षड्यन्त्र विश्वस्तरपर मानवोचित शीलकी सीमामें जघन्य अपराध उद्घोषित हो! विकासके नामपर पर्यावरणको विकृत और विलुप्त करनेके समस्त प्रकल्प निरस्त हों! स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके हितमें पाश्चात्य जगत्का नववर्ष विनियुक्त हो! पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन और आकाश सर्वशान्तिप्रद और सुखप्रद हों!

~ निश्चलानन्दसरस्वती
~ श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य - गोवर्द्धनमठ - पुरीपीठ
ओडिशा - भारत

नवकलेवर
और
रथयात्रा

नवकलेवर और रथयात्रा

© लेखक

चौथा संस्करण: 2015

मूल्य: ₹ 50/- मात्र

लेखक: अशोक पाण्डेय
E-mail: ashok.pandey.pandey630@gmail.com
Website: **www.mahaprabhu.in**

ISBN: 978-81-903707-5-2

प्रकाशक: रामा पब्लिकेशन्स
एच-3/26, बंगाली कॉलोनी,
महावीर एन्क्लेव, नई दिल्ली-45
फोन: 09313553434, 09311353434
E-mail: ramapublications@gmail.com

NAVKALEVAR AUR RATHYATRA

© Author

4th Edition : 2015

Price : ₹ 50/- only

Author : **Ashok Pandey**
E-mail: ashok.pandey.pandey630@gmail.com
Website: **www.mahaprabhu.in**

ISBN: 978-81-903707-5-2

Publisher : **Rama Publications**
H-3/26, Bengali Colony,
Mahavir Enclave, Palam,
New Delhi-110045
Ph.: 09313 55 3434, 09311 35 3434
E-mail: ramapublications@gmail.com

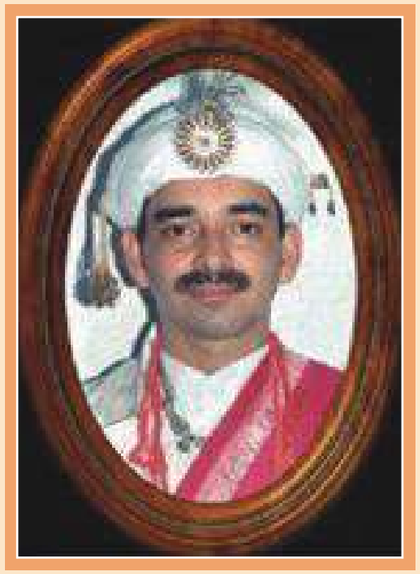

महाप्रभु जगन्नाथ के प्रथम सेवक

गजपति महाराज श्री दिव्य सिंहदेव जी

के चरण कमलों में

श्रद्धा-सुमन

जय जगन्नाथ!

लेखक की कलम से...

श्रद्धालु जगन्नाथ भक्त पाठकगण,

कहते हैं कि जगन्नाथजी जगत के नाथ हैं। कलियुग के ये एकमात्र पूर्ण दारुब्रह्म हैं जिनका नवकलेवर का यह वर्ष-2015 है। ओडिशा प्रदेश सरकार से लेकर भारत सरकार जगन्नाथजी के इस नवकलेवर को अतुल्य भारत के रूप में घोषित कर चुकी हैं। लगभग 50 लाख जगन्नाथभक्त 18 जुलाई, 2015 को महाप्रभु के नवकलेवर और उनकी विश्व प्रसिद्ध रथयात्रा को देखने के लिए पुरी घाम पधार रहे हैं। ऐसे में मैंने यह उचित समझा कि मैं हिन्दी के माध्यम से विश्वमैत्री एवं सर्वधर्म समन्वय के प्रतीक जगन्नाथजी की सरल एवं सहज जानकारी समस्त जगन्नाथभक्तों को इस पुस्तक के माध्यम से दूँ।

मैं पुरी धाम के जगद्गुरु परमपाद स्वामी निश्चलानन्दजी सरस्वती, जगन्नाथ भक्त कटक निवासी श्री महिमानन्दजी मिश्र, कीट-कीस के संस्थापक डॉ. अच्युत सामंत, जगन्नाथ भक्त श्री सुरेन्द्र कुमार डालमिया, दूरदर्शन केन्द्र भुवनेश्वर, उत्कल बिलण्डर के मालिक श्री सुभाष भुरा और हिन्दी डेली सन्मार्ग कोलकाता व ओडिशा व हिन्दी डेली मिलाप हैदराबाद के प्रति आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस पवित्र लेखन कार्य में पूर्ण सहयोग दिया। मैं आभारी हूँ अपने प्रकाशक रामा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली एवं अपने www.in वेब डिजाइनर श्री बी.के. शर्मा जी, रांची, झारखण्ड का जिनके माध्यम से पहली बार हिन्दी के माध्यम से जगन्नाथ संस्कृति को पूरे विश्व में फैलाने का मुझे सुनहरा मौका मिला।

मैं कोई लेखक नही हूँ और न ही जगन्नाथ संस्कृति का बहुत बड़ा जानकार, मैं तो अपने अहंकार आदि का पूरी तरह से त्यागकर जगन्नाथजी की शरण में रहता हूँ और उन्हीं की प्रेरणा से समस्त जगन्नाथभक्तों के लिए जगन्नाथजी के विषय में कुछ-कुछ लिखते रहता हूँ और आजीवन लिखता रहूँगा।

जय जगन्नाथ!

अशोक पाण्डेय

देवस्नान पूर्णिमा, पुरी धाम — 2 जून 2015

जयदेव 13वीं सदी में जगन्नाथ जी के दर्शन के लिये पुरी आये।

परम पूज्य स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वती की अनोखी पहलः श्री जगन्नाथ पंचरात्र महोत्सव

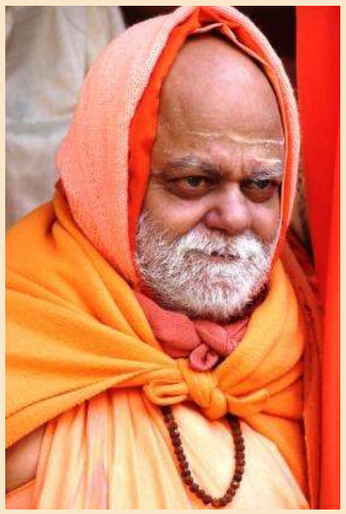

स्वामीजी की पहल पर पहली बार पुरी धाम में दिनांक 09 फरवरी, 2012 से दिनांक 14 फरवरी, 2012 तक विश्व के समस्त जगन्नाथ मंदिर प्रमुखों का 6 दिवसीय समागम हुआ जिसमें विश्व के लगभग 1000 साधु-संतों का अद्वितीय समागम हुआ। इस समागम का नाम दिया गया **'श्री जगन्नाथ पंचरात्र महोत्सव'।** इसके आयोजन का उद्देश्य पूरे विश्व में जगन्नाथ संस्कृति का श्रीमद्भागवत कथा, रामकथा, श्रीकृष्ण कथा आदि की तरह जगन्नाथजी की कथा भी वर्ष भर कम से कम 5 दिवस, 7 दिवस, 9 दिवस और 11 दिवस तक जाने माने श्रीजगन्नाथ व्यास से कराई जाये। साथ ही साथ श्रीजगन्नाथ मंदिर की मान्य रीति-नीति की तरह ही श्री जगन्नाथजी की दिनचर्या, पूजा-पाठ, भोग और पर्व-त्यौहार आयोजित हो। विश्व प्रसिद्ध रथयात्रा, बाहुड़ा यात्रा और सोना वेष आदि के आयोजन की तारीख वहीं हों जो पुरी धाम के जगन्नाथ मंदिर की हर साल रहती हैं।

श्री जगन्नाथ मंदिर प्रशासन, पुरी धाम ने इस जिम्मेदारी को वहन किया जिसमें मार्गदर्शन मिला पुरी धाम के शंकराचार्य पूज्य पूज्य स्वामी श्री श्री निश्चलानंदजी सरस्वती का एवं पुरी के गजपति महाराज श्री श्री दिव्यसिंहदेवजी का। सहयोगी संत-महात्माओं में पूज्य स्वामी नर्लिप्तानंद सरस्वती, पूज्य बाबा चैतन्य चरण दास, पूज्य बाबा सच्चिदानंद दास, प्रो. डॉ. आलेख चरण सारंगी,

रामानुजाचार्य 20वीं सदी में जगन्नाथ जी के दर्शन के लिये पुरी आये।

पूज्य स्वामी परमहंस प्रज्ञानंद दास, पूज्य स्वामी माधवानंद सरस्वती, पूज्य स्वामी निगमानंद सरस्वती, पूज्य बाबा किशोरी चरण दास, पूज्य स्वामी परिसुधानंद, पूज्य स्वामी शिवचितानंद, पूज्य स्वामी धर्मप्रकाशानंद, पूज्य स्वामी असीमानंद सरस्वती, श्री प्रदीप्त कुमार महापात्र, (मुख्यप्रशासक, पुरी श्रीमंदिर), प्रो. डॉ. नीलकण्ठ पति जबकि मुख्य यजमान रहे उद्योगपति एवं सच्चे समाजसेवी श्री सुरेंद्र कुमार डालमिया।

इस अवसर पर एक स्मारिका का भी विमोचन किया गया। साथ ही साथ यह भी सुनिश्चित किया गया कि श्रीमंदिर प्रशासन पुरी की ओर से श्रीजगन्नाथजी की दिनचर्या एवं पूजन विधि आदि की एक मान्य रचना देवनागरी लिपि में प्रकाशित की जाय जिसके आधार पर पूरे विश्व के जगन्नाथ मंदिरों में श्रीजगन्नाथजी की पूजा आदि में एकरूपता बनी रहे। यह आयोजन पूरी तरह से कामयाब रहा।

रथयात्रा के अन्य नाम- गुण्डीचा यात्रा, घोष यात्रा, नौदिन यात्रा, दशावतार यात्रा।

भारत के अनन्यतम धाम पुरी धाम के शंकराचार्य एवं पुरी गोवर्द्धनपीठ के 145वें पीठाधीश्वर परम पूज्य श्रीजगतगुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानंदजी सरस्वतीजी महाराज का नववर्ष 2015 का समस्त भारतवासियों के नाम पावन संदेश

''संदेश नहीं मैं स्वर्ग का लाया, भूतल को स्वर्ग बनाने आया।''

स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी की ये पंक्तियाँ नई सदी के वास्तविक संन्यासी, मनीषी, विदेह, त्यागी, तपस्वी एवं भारतीयता की रक्षा करने वाले पुरी धाम के शंकराचार्य परम पूज्य श्रीजगतगुरु शंकराचार्य के साथ अक्षरशः चरितार्थ हो रही है।

स्वामीजी का यह भी मानना है-

''निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी,
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि-बलिदानी।''

स्वामीजी समष्टि के हित के लिए व्यष्टि का बलिदान चाहते हैं और यही भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र भी है। आप सदा यह चाहते हैं कि भारत विश्व आध्यात्मिक चेतना का केन्द्र बिंदु बना रहे। शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य अर्थ और काम न हो। आपको जननी, जन्मभूमि से अटूट लगाव है। आपको भारतदेश की सुरक्षा, कल्याण, भारतीय संस्कृति को बचाये रखने एवं आध्यात्मिक चेतना को बचाये रखने की चिंता है।

आपका आविर्भाव आर्यावर्त की मिथिलांचल पावन धरा-धाम

पद्मपुराण के अनुसार आषाढ़ शुक्ल द्वितीया सभी कार्यों के लिए सिद्धिदायिनी मानी जाती है।

पर हुआ जहाँ पर विदेह राजा जनक, जनकनंदिनी श्री सीता, गौतम बुद्ध, कणादि, कुमारिल, मण्डन, वाचस्पति, शंकर मिश्र, उदयन, गणेश उपाध्याय, मैथिल कोकिल विद्यापति, गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, उभयभारती आदि का आविर्भाव हुआ था। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान बुद्ध का हुआ था। आप जब 2 साल के थे तो रात के बारह-बारह बजे तक जगकर पढ़ते थे, आप 6 साल के बाल्यकाल से ही भारतीय धर्म, दर्शन और अध्यात्म से जुड़ गये। जब आप 10 साल के हुए तभी से आपका मन संन्यासी जीवन में रम गया और उसी समय आपने समस्त वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण और महाभारत पढ़ डाली। एक बार बचपन में आपने सपना देखा कि आपके गांव के समीप के भगवान श्रीकृष्ण मंदिर से भगवान का आभूषण चोरी हो गया है और सुबह जब देखा गया तो सचमुच भगवान का कीमती आभूषण चोरी हो गया था। कहते हैं कि आपके बाल्यकाल में ही भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं आपके सम्मुख प्रकट होकर आपके कंधों पर हाथ रखकर आपको अपना सखा स्वीकार किया था। कल क्या होने वाला है इसकी जानकारी आपको अपनी साधना और दिव्यशक्ति से हो जाती है। आप पिछले 50 सालों से महाप्रभु श्री जगन्नाथजी महाराज के देश के संस्कृति पुरुष रहे हैं। सहजता एवं वितरागी जीवन आपकी पहचान रही। आप भारतीय संस्कृति की पर्याय बन चुकी जगन्नाथ संस्कृति के प्रचारक हैं। श्रीमंदिर में रथयात्रा, देवस्नानपूर्णिमा और बाहुड़ा यात्रा में प्रभु की प्रथम सेवा का पूर्ण अधिकार है। आप पुरी गोवर्द्धन पीठ के पीठाधीश्वर हैं जहाँ के मुख्य देव भगवान श्री जगन्नाथजी और माता विमलाजी मुख्य देवी हैं।

आप भारतीय आध्यात्मिक चेतना के पुरोधा, ऋग्वेद के अनुपालक, श्रीजगन्नाथ संस्कृति के यथार्थ आदर्श एवं भारतीय युवा विवेक के निर्माता हैं। आपने अपने एक प्रवचन में बड़ी विनम्रता, विलक्षणता एवं शालीनता के साथ यह बताया कि आज की शिक्षा व्यवस्था पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित हो चुकी है जहाँ पर जीवन के शाश्वत जीवन मूल्यों, नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक मूल्यों का ह्रास हो चुका है। आज की शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह से अर्थ और काम तक सीमित होकर रह गई है। आज के बच्चे नहीं जानते कि भारतीयता क्या है और

पहण्डी संस्कृत का शब्द है जिसका हिन्दी अर्थ है- पदहुण्ड अर्थात् कदम रखते हुए चलना।

हमारे संस्कार क्या हैं? ऐसे में आज के युवावर्ग को अपने बड़े-बुजुर्गों का आदर करना, शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित साधु-संतों के प्रवचन आदि को सुनना चाहिए। उन्होंने बताया कि आज के प्रजातंत्र की अवधारणा बदल चुकी है। आज न वशिष्ठ जैसा गुरु है और न ही राम जैसा छात्र। ऐसे में सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि आज के युवावर्ग को दिशाहीन होने से बचाने की है और यह तभी संभव है जब आज के युवा इस बात को स्वीकार करें कि उनका सर्वांगीण विकास भारतीयता को अपनाकर आगे बढ़ने में ही है। उन्होंने भारतीय संयुक्त परिवार की टूटती दशा पर चिंता व्यक्त करते हुए आज के अन्तरजातीय विवाह के बढ़ते प्रचलन को दोषी बताया। जैसा कि विदित हो कि स्वामीजी न केवल जगन्नाथ संस्कृति के प्रचारक हैं अपितु भारतीय आध्यात्मिक चेतना के प्राण, भारतीय राष्ट्रीय विवेक के निर्माता भी हैं जिनके आचरण, व्यवहार एवं पारदर्शी उज्ज्वल व्यक्तित्व में समाज को बचाने की प्रेरणा समाहित है।

प्राप्त जानकारी के आधार पर पुरी गोवर्द्धनपीठ का निर्माण आज से लगभग 2500 साल पहले हो चुका था जबकि पुरी धाम के श्रीमंदिर का निर्माण 1215 में हुआ। आपकी चिंता आज के व्यक्ति, समाज, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाजसेवा, सरकार, प्रजा, गुरु, शिष्य, शाश्वत जीवन मूल्य, नैतिक मूल्य, प्रजातांत्रिक मूल्य, योग साधना, ध्यान, चिंतन, मनन, वेदपाठ, गौरक्षा, साधु-संतों की सुरक्षा, भारत के तीर्थस्थलों की सुरक्षा एवं साफ-सफाई, कर्त्तव्यबोध, शक्तिबोध, व्यावहारिक ज्ञान, शिष्टाचार, सहयोग, मैत्री और सही संस्कार आदि की है।

जगन्नाथजी विश्वमैत्री, आनन्दमय चेतना के प्रतीक हैं।

यह महाप्रभु जगन्नाथ के देश उत्कृष्ट कलाओं के प्रदेश ओडिशा की वास्तविक पहचान है

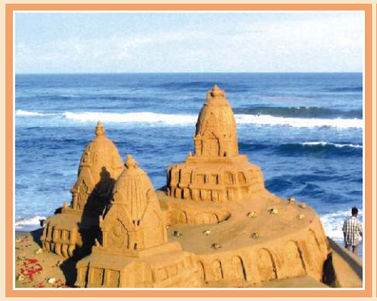

श्री जगन्नाथ जी की सेवा, पूजा और अर्चना के लिए सैकड़ों वर्षों से 'सेवायत' रखने की परम्परा है।

पुरी के गजपति महाराज जी श्रीमंदिर के प्रथम और प्रधान सेवक हैं।

अनुक्रमणिका

- श्रीजगन्नाथाष्टकम् 13
- प्रमुख झलकियाँ 17
- चित्रों में जगन्नाथ पुरी 19
- स्कन्दपुराण में उत्कल एवं महाप्रभु जगन्नाथ 24
- परम्परा 28
- श्रीमन्दिर कला और वास्तुशिल्प 37
- इतिहास के झरोखे से 40
- कलियुग के एकमात्र पूर्ण दारुब्रह्म जगन्नाथजी का नवकलेवर-2015 50
- चित्रों में नवकलेवर 2015 56
- नवकलेवर 2015 : एक अवलोकन 66
- नव कलेवर 69
  (क) नवकलेवर की परम्परा 69
  (ख) नवकलेवर: एक विवेचन 75
  (ग) नवकलेवर: विधि-विधान 80
  (घ) नवकलेवर 1996 93
- पूर्ण दारुब्रह्म जगन्नाथ जी का अलौकिक सांस्कृतिक महोत्सव रथयात्रा: 2015 98
- पंचरात्र महोत्सव 2012 110
- पुरुषोत्तम मास के पुरुषोत्तम क्षेत्र में पुरुषोत्तम महाप्रभु जगन्नाथ का पंचरात्र महोत्सव 14 जुलाई 2015 से 113
- 'आर्ट ऑफ गीविंग': अनन्य जगन्नाथभक्त प्रोफेसर डॉ. अच्युत सामंत का जीवन दर्शन 115
- तीन क्षणिकाएँ 118
- संदर्भ ग्रन्थों की सूची 120

श्रीजगन्नाथाष्टकम्

कदाचित् कालिन्दीतट-विपिन-संगीत करवो
मुदाभीरी-नारी-वदन कमलास्वाद-मधुपः।
रमाशम्भुब्रह्माऽमरपतिगणेशार्चितपदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ 1 ॥

कभी यमुना के तटीय वन में मधुर गीत गाते हुए, कभी भ्रमर की तरह गोपियों के मुख-कमल का रसास्वादन करते हुए तथा जिनके चरणों को लक्ष्मी, शंकर, ब्रह्मा और गणेश वन्दना करते हैं, ऐसे सबके स्वामी महाप्रभु जगन्नाथ मुझे दर्शन दें।

Once you appeared in the woods. On the bank of Kalandi. Dancing to the tune of the sweet concert. Seeking nectar from the lotus faces of cowherd women. Your feet adored by Laxmi, Siva, Indra and Ganesh. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

भुजे सव्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटितटे
दुकूलं नेत्रान्ते सहचर कटाक्षं-विदधते।
सदा श्रीमद् वृन्दावन वसति लीला-परिचयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ २ ॥

जो अपने दाएँ हाथ में बाँसुरी धारण करते हैं, जिनके सिर पर मोर के पंखवाला मुकुट हो, जो पीला वस्त्र धारण करते हों, जो अपने मित्रों पर कटाक्ष करते हों, जो हमेशा वृन्दावन में रहकर अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हों, हे ऐसे सबके स्वामी महाप्रभु जगन्नाथ, मुझे दर्शन दें।

Holding flute in your hand. Head bedecked with peacock tall. And the yellow silk in the waist. Glancing at your companions. All the time you bask in the glory. And perform leelas in the Vrindavan. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादन्तः सहज बलभद्रेण वलिना।
सुभद्रा मध्यस्थः सकल सुरसेवाऽवसरदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ ३ ॥

हे महान् नील समुद्रवर्णा तेजस्वी, नीलशैल पर अपने बड़े भाई बलभद्र तथा बहन सुभद्रा के साथ निवास करने वाले, सभी देवों को अपनी सेवा का अवसर देने वाले, हे सबके स्वामी महाप्रभु जगन्नाथ, मुझे दर्शन दें।

Close by the ocean on the shining blue mountain. Sharing he sanctum santorum with the mighty Balabhadra. And Subhadra seated at the centre, you offer chances to the deities. For paving obeisance. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

कृपापारावारः सजलजलदश्रेणि रुचिरो
रमावाणीरामः स्फुरदमलपद्मे क्षणमुखैः।
सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगणशिखा गीत चरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ ४ ॥

हे कृपासिन्धु! घने मेघ स्वरूप वाले, लक्ष्मी और सरस्वती के साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करने वाले, तेज, स्वच्छ नयन-कमल वाले, देवताओं द्वारा पूजित

होने वाले, श्रुतियों में वर्णित अच्छे चरित्र वाले, हे महाप्रभु संसार के स्वामी! मुझे दर्शन दें।

Oh ocean of compassion. Whose form resembles a range of thick clouds. Who treks his way with Laxmi and Saraswati. Whom Lord of the deities adore with vedic chanting, waving of flames and reading His leelas in rhyme. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

रथारूढ़ो गच्छन् पथिमिलित-भूदेवपटलैः
स्तुतिः प्रादुर्भावं प्रतिपदं मुपाकर्ण्य सदयः।
दयासिन्धुर्बन्धुः सकलजगतां सिन्धुसुताया
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ ५ ॥

रथ पर विराजमान होते समय जिनकी ब्राह्मणों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है, जो भक्तों की प्रार्थना सुनते हैं, जो दयालु हैं, लोकबन्धु हैं, दयासागर हैं, वही हे महाप्रभु जगन्नाथ! संसार के स्वामी, मुझे दर्शन दें।

Ascending the chariot when you proceed. Monarchs throng on your pathway. Hearing the burden of their hymns with compassion. Ocean of grace, the friend of universe, being merciful (to the ocean). You have chosen your adobe ashore. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

परंब्रह्मापीढ्यः कुवलयदलोत्फुल्ल नयनो
निवासी नीलाद्रौ निहित चरणोऽनन्तशिरसि।
रसानन्दो राधा सरसवपुरालिंगनसुखो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ ६ ॥

हे परमब्रह्म सुखकारी, कमल दल नयन वाले, आनन्दसागर, आनन्दपथ चेतना के स्वामी, भगवती राधा के साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करने वाले, हे महाप्रभु, संसार के स्वामी मुझे दर्शन दें।

Holding fast to your all-pervading self. You who have lotus-petalled eyes, blissful. Reside in Niladri with your feet resting on Ananta naga. Basking in blissful love you are in ecstasy. While embracing the

elegant shape of Radhika. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

न वै प्रार्थ्यं राज्यं न च कनकमाणिक्य विभवं
न याचेऽहं रम्यां निखिलजनकाम्यां वरवधूम्।
सदाकाले काले प्रमथपतिना गीत चरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ ७ ॥

मैं राज-पाट नहीं माँगता, न ही सोने-चांदी की चमक-दमक, मुझे दूसरों की तरह कंचन-कामिनी भी नहीं चाहिए, सभी युगों में शिव-शंकर जिसकी लीलाओं का गुणगान करते हैं, हे महाप्रभु! संसार के स्वामी मुझे दर्शन दें।

Neither I crave for kingdom nor for gold, fuby and wealth. I do not pray for the most beautiful woman coveted by all. Your leelas is sung in every age by Shiva Shankar. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

हर त्वं संसारं द्रुततरमसारं सुरपते
हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते।
अहो दीनानाथो निहितमचलं निश्चितपदं
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥ ८ ॥

हे देवों के देव! आप हमारे सांसारिक कष्टों को यथाशीघ्र दूर करें। हे यदुनन्दन! हमें पाप-मुक्त करो। हे दीनबन्धु, हे अनाथों के नाथ, हे सबके स्वामी! महाप्रभु जगन्नाथ, मुझे दर्शन दें।

Lord of the deities, save me from the clutches of this ephemeral world. Oh Lord of Yadus, free me from the unearable burden of sins. You are the Lord of the sufferers. You grant graciously the touch of your lotus feet. Oh Lord! the Master of the Universe, appear in my vision.

ॐ प्रमुख झलकियाँ ॐ

श्री मन्दिर की बाईस सीढ़ियाँ- स्वार्थ, क्रोध, ईर्ष्या, लालच, अहंकार से मुक्त होकर ही भक्त महाप्रभु के दर्शन कर सकता है। श्रीमन्दिर के सिंहद्वार पर इन बाईस सीढ़ियों में पहली पाँच सीढ़ियाँ हमारी ज्ञानेन्द्रियों- आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा की प्रतीक हैं। दूसरी पाँच सीढ़ियाँ- प्राण, अपाण, व्यान, उदान और समान प्राणवायु की प्रतीक हैं। तीसरी पाँच सीढ़ियाँ रूपक रस, स्वाद, गन्ध, श्रवण और स्पर्श की प्रतीक हैं। उसके बाद की पाँच सीढ़ियाँ- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और शारीरिक चेतना की प्रतीक हैं और अंतिम दो सीढ़ियाँ बुद्धि और अहंकार की प्रतीक हैं। ऐसी मान्यता है कि भक्त अपने बाईस दोषों को छोड़कर ही बाईस सीढ़ियों को पार कर महाप्रभु के दर्शन करता है।

चालीस जीवन मूल्य- सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शुद्धता, सन्तोष, आत्मसंयम, शास्त्राभ्यास, भगवद्भक्ति, आध्यात्मिक विवेक, अनासक्ति, आत्मानुशासन, इन्द्रिय निग्रह, सहिष्णुता, पवित्रता, क्षमा, साहस, करुणा, औदात्य, आर्जव, परमार्थ, अमानित्व, पाखण्ड से मुक्ति, परोक्ष निन्दा का अभाव, सीधापन, विनय भाव, सहनशीलता, सेवाभाव, सत्संगति, जप, ध्यान, अद्वेष, निर्भयता, स्थिर चित्तता, निरहंकार, मैत्रीभाव, उदारता, कर्त्तव्यनिष्ठा और धीरज।

अब तक के नवकलेवर- 1733, 1744, 1752, 1790, 1809, 1828, 1836, 1855, 1874, 1904, 1912, 1931, 1950, 1969, 1977 1996 और 2012 में।

– जानकारी ओड़िशा रेफरेंस, 2005 उड़ीसा आई एंड पी. आर. डिपार्टमेंट द्वारा प्रकाशित से साभार

नवकलेवर की मान्य औपचारिकताएँ-

1. वनयात्रा, अलग-अलग देव विग्रहों के लिए अलग-अलग स्थलों पर दिव्यवाणी के निर्देशानुसार दारु (नीम काष्ठ की खोज)
2. नव विग्रह-निर्माण
3. ब्रह्म पदार्थ (मानव तन निर्माण)
4. श्रीमंदिर के रत्नवेदी पर विराजमान किये गये पुराने विग्रहों का अंतिम संस्कार
5. नवनिर्मित विग्रहों को हर प्रकार से सजाना और संवारना

नीलचक्र- श्रीमंदिर के ऊपरी भाग में नीलचक्र है जिससे लगा हुआ पतितपावन बाना है। नीलचक्र आठ अलग-अलग धातुओं से निर्मित है। इसकी परिधि 36 फीट और ऊँचाई 11 फीट 8 इंच है।

पतितपावन बाना (ध्वज)- जो विजय ध्वज श्रीमंदिर के ऊपर सदा लहराता रहता है, उसे पतितपावनी बाना अर्थात् ध्वज कहा जाता है जो लगभग 150 फीट का होता है।

सेवायत- श्री जगन्नाथ जी की सेवा, पूजा और अर्चना के लिए सैकड़ों वर्षों से ''सेवायत'' अथवा सेवक रखने की परम्परा है। ये सेवक लगभग 36 प्रकार के हैं। श्रीमंदिर के सत्व लिपि ग्रन्थ में 119 प्रकार के सेवकों का वर्णन है। वास्तव में श्री जगन्नाथ जी के सेवकों की संख्या बहुत ज्यादा है। ये सेवक श्री जगन्नाथ जी की सेवा-पूजा करते हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी से इसे ये अपना परम कर्त्तव्य मानकर यथाविधि अपने कर्तव्य का पालन करते आ रहे हैं। ये सेवक श्रीमंदिर के साथ-साथ इस मन्दिर के अंतर्गत अन्य मन्दिरों में स्थित देव-देवियों की पूजा-अर्चना आदि भी करते हैं।

प्रत्येक सेवक के लिए अलग-अलग सेवा-कार्य होता है। नियमानुसार प्रत्येक सेवक को सिर्फ अपना सेवाकार्य करना पड़ता है। सेवकों को उनके सेवाकार्य के लिए वेतन देने का विधान नहीं है। श्री जगन्नाथ जी और अन्य देवियों की पूजा, अर्चना, भोग, प्रसाद आदि से प्राप्त आय को सेवक आनन्दपूर्वक ग्रहण करते हैं। दो प्रकार की सेवाएँ हैं, मुख्यतः राज सेवा और अन्यान्य सेवाएँ। सेवकों की संख्या लगभग 6,000 है।

पुरी के गजपति महाराज जी श्रीमंदिर के प्रथम और प्रधान सेवक हैं। रथयात्रा के समय वे तीनों रथों को सोने की झाड़ू से साफ करते हैं। नव कलेवर के समय महाराज के हाथों से सुपारी ग्रहणकर दइता और ब्राह्मण दारु (काष्ठ) की खोज में निकलते हैं। श्रीमंदिर के प्रमुख सेवकगण-राजगुरु, पाटयोषी, महापात्र, तलिछ, महापात्र, भंडार मेकाप, पालिआ मेकाप, पुरोहित, मुदिरथ, पुष्पालक, बड़ पण्डा, महाजन, प्रतिहारी, खुटिया, पति महापात्र, गरावडु, विमानवडु, दइता, गोछिकार, सुना गोस्वामी, महासुआर, पाइक, रोष पाइक, पुराण पंडा, चित्रकार, रूपकार, घंटुआ आदि हैं।

अधिमास में गेहूँ, चावल, धान, जौ, तिल, मटर, बथुआ, शरतूत का भोजन करना चाहिए।

चित्रों में जगन्नाथ पुरी

जगन्नाथ मंदिर पुरी

गुण्डीचा मंदिर

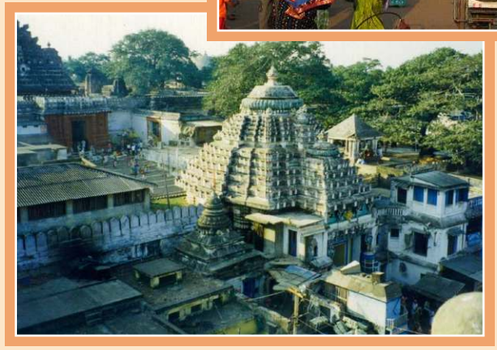

पुरी धाम

अधिमास में शाम को एक ही वक्त भोजन करना चाहिए।

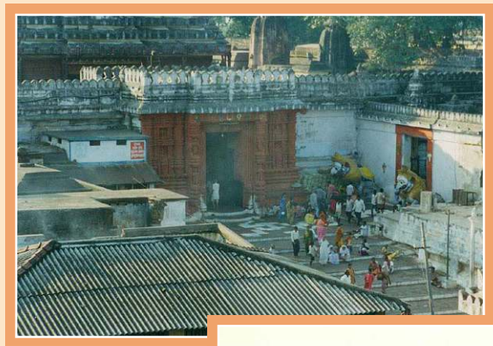

श्रीमंदिर की
22 सीढ़ियाँ

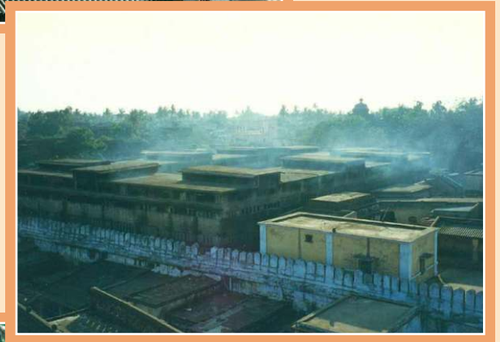

जगन्नाथपुरी
रसोई

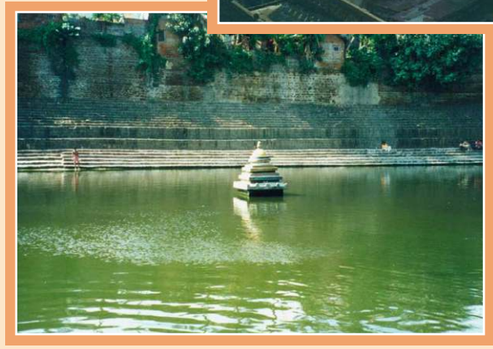

इंद्रद्युम्न
सरोवर

अधिमास में रजस्वला स्त्री और संस्कारहीन लोगों से दूर रहना चाहिए।

पहण्डी

देवस्नान
पूर्णिमा

अधिमास में प्रात:काल सूर्योदय से पूर्व उठकर अपना नित्य कार्य करना चाहिए।

शंकराचार्य
स्वामी
निश्चलानंद सरस्वती
जी महाराज

सोना वेष

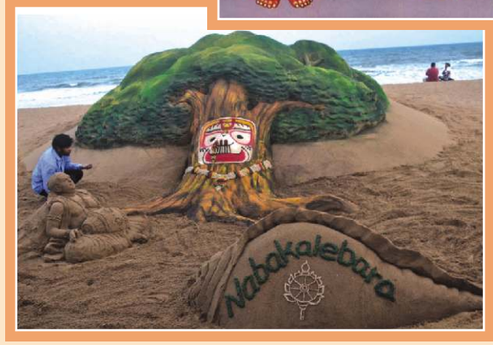

नवकलेवर
चित्रकला,
पुरी बीच

अधिमास में रजस्वला स्त्री और संस्कारहीन लोगों से दूर रहना चाहिए।

गजपति जी
महाराज

माननीय मुख्यमंत्री
श्री नवीन पटनायक
अक्षय तृतीया पर
हल जोतते हुए

अधिमास में प्रात:काल सूर्योदय से पूर्व उठकर अपना नित्य कार्य करना चाहिए।

स्कन्दपुराण में उत्कल एवं महाप्रभु जगन्नाथ

भगवद्गीता के 15वें अध्याय में महाप्रभु जगन्नाथ को संसार के स्वामी के रूप में माना गया है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में श्रीराम विभीषण को जगन्नाथ जी की पूजा करने की सलाह देते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मपुराण और मत्स्य पुराण में इनकी चर्चा है, लेकिन स्कन्दपुराण में इनकी विस्तृत चर्चा है। स्कन्दपुराण में तो महाप्रभु के साथ-साथ उत्कल-महिमा का सविस्तार वर्णन है।

स्कन्दपुराण में उत्कल महिमा– प्रसंगानुसार मुनियों ने जैमिनि जी से प्रश्न किया- जहाँ काष्ठ प्रतिमा के रूप में साक्षात् महाप्रभु जगन्नाथ जी विराजमान हैं, वह पुरुषोत्तम क्षेत्र कहाँ है? जैमिनि ने उत्तर दिया कि उत्कल नाम से प्रसिद्ध एक परम पावन देश हैं, जहाँ अनेक तीर्थ और बहुत से पवित्र मन्दिर हैं। वह प्रदेश दक्षिण समुद्र तट पर बसा है। उसमें रहने वाले पुरुष सदाचार के आदर्श हैं। वहाँ के ब्राह्मण उत्तम आचार और स्वाध्याय से सम्पन्न हो हमेशा यज्ञ कर्म में लीन रहते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में यज्ञ और वेदाध्ययन की प्रवृत्ति वहीं से होती है। वहाँ के निवासी ब्राह्मण वेद-शास्त्रों के प्रवर्त्तक हैं। वह देश 18 विद्याओं का खजाना है। वहाँ जगन्नाथ जी की आज्ञा से घर-घर में लक्ष्मी का निवास है। उस देश के

निवासी लजालु, विनयशील, चिन्तारहित, रोगमुक्त, मातृ-पितृ भक्त, सत्यवादी तथा विष्णुभक्त हैं। वहाँ सभी जगन्नाथ भक्त हैं। उस प्रदेश के लोग दीर्घजीवी हैं। स्त्रियाँ पतिव्रता, सुशीला, धर्म-परायणा, लज्जा और सदाचार से विभूषित, रूपवती, सब प्रकार के आभूषणों से अलंकृत, कुल, शील और वर्ण के अनुसार आचार-विचार का पालन करने वाली हैं।

वहाँ के क्षत्रिय कर्त्तव्यपालक हैं। वे प्रजा की रक्षा में दक्ष हैं। वे दान देने में उदार और सभी शास्त्रों के जानकार हैं। वे अपने आश्रितों को उनकी कामना से कहीं अधिक दान देते हैं।

वहाँ के वैश्य कृषि, वाणिज्य और गोरक्षा का कार्य करते हैं। वे अपनी भक्ति और धन से देवता, ब्राह्मण और गुरू को खुश रखते हैं। वहाँ एक घर पर पधारे याचक को दूसरे घर पर जाने की आवश्यकता नहीं होती। उस देश के शूद्र भी संगीत, साहित्य और कला में कुशल हैं। वे प्रिय वचन बोलते हैं। वे मन, वचन और कर्म से ब्राह्मणों की सेवा में लगे रहते हैं।

स्कन्दपुराण में महाप्रभु जगन्नाथ– मुनियों के प्रश्न पूछने पर जैमिनि जी ने बताया कि सतयुग में इन्द्रद्युम्न नामक एक श्रेष्ठ राजा हुआ। उसका जन्म सूर्यवंश में हुआ था। वह ब्रह्मा जी से पाँच पीढ़ी नीचे था। सह सत्यवादी, सदाचारी, शुद्ध और सात्विक राजा था। प्रजा को अपनी सन्तान समझ कर वह सदा न्यायपूर्वक जीवन व्यतीत करता था।

एक दिन राजा ने अपने पुरोहित से कहा- आप उस क्षेत्र का पता लगाइए, जहाँ महाप्रभु जगन्नाथ के वह साक्षात् दर्शन कर सकें। उसी समय एक व्यक्ति आया और अपने आप यह बताया कि भारत वर्ष में उड्र नाम से एक प्रसिद्ध देश हैं। उस देश में दक्षिण समुद्र के किनारे श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र है, जहाँ नीलांचल पर्वत है। वह प्रदेश चारों ओर से वनों से घिरा है। उसके बीच में एक कल्पवृक्ष है, जिसके पश्चिम में रोहिणी नामक एक कुण्ड है। उसके जल को स्पर्श करने से ही मोक्ष मिल जाता है। उसके पूर्वी तट पर इन्द्रनीलमणि की बनी हुई भगवान वासुदेव की प्रतिमा है, जो साक्षात् मोक्ष प्रदान करने वाली है। उस कुण्ड में स्नान करके जो महाप्रभु जगन्नाथ जी के दर्शन करता है, वह मोक्ष पाता है। वहाँ

शबरद्वीप नाम का एक आश्रम है। उस आश्रम से एक रास्ता उनके मन्दिर तक जाता है। वहाँ महाप्रभु जगन्नाथ जी शंख, चक्र, गदा, पद्म धारी साक्षात् विराजमान हैं। यह कहकर वह व्यक्ति अन्तर्ध्यान हो गया।

पुरोहित ने सलाह दी कि हम सब चलकर वहीं बस जाएँ, मानव जीवन की सफलता इससे बड़ी क्या हो सकती है? राजा इन्द्रद्युम्न ने पुरोहित की बात मान ली। पुरोहित का छोटा भाई विद्यापति समस्त विश्वसनीय पुरुषों को लेकर उड्र देश को चल दिया। महानदी को पार कर वह एकाम्र वन पहुँचा। महाप्रभु जगन्नाथ की खोज करते हुए वह नीलांचल जा पहुँचा। वहाँ से आगे कोई रास्ता नहीं था। तभी उसे अलौकिक वाणी सुनाई पड़ी। उस आवाज को सुनकर वह पीछे-पीछे चल दिया। कुछ दूर पर उसे शबरद्वीप आश्रम मिला। वहाँ भक्तों को उसने प्रणाम किया। ठीक उसी समय अपनी पूजा समाप्त करके विश्वावसु वहाँ आया। यह देखकर ब्राह्मण बहुत खुश हुआ। उसने अपना परिचय देते हुए बताया कि वह वहाँ नीलमाधव के दर्शन के लिये आया है। उसने यह भी बताया कि जब तक वह अवन्ती के राजा को नीलमाधव के विषय में बतला न देगा, तब तक वह निराहार ही रहेगा। उस ब्राह्मण ने नीलमाधव के दर्शन की इच्छा प्रकट की। विश्वावसु ने पहले तो उस स्थान को बताने से मना कर दिया। विद्यापति नामक ब्राह्मण ने देखा कि विश्वावसु की ललिता नाम की एक रूपवती कन्या है। उसके पास वह गया और सीधे उससे विवाह करने का प्रस्ताव रख दिया। कालान्तर में ललिता और विद्यापति का विवाह हो गया और अब वे दोनों सूखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

एक दिन विद्यापति ने ललिता से कहा कि वह अपने पिता से पूछे कि नीलमाधव के पूजास्थल तक वह कैसे जा सकता है। उसने ललिता को यह भी चेतावनी दी कि उसकी बात अगर वह नहीं मानेगी तो वह उसे छोड़कर चला जाएगा।

पिताजी के आने पर उदास ललिता ने सारी बात बताई। विश्वावसु अब तो लाचार था। वह एक शर्त पर विद्यापति को नीलमाधव के दर्शन कराने को तैयार हो गया। उसने कहा कि वहाँ जाते और आते समय विद्यापति की आँखों पर पट्टी बंधी रहेगी। वह जैसे ही नीलमाधव के दर्शन करेगा, पुनः उसकी आँखों पर

पट्टी बाँध दी जाएगी। हुआ ऐसा ही, लेकिन ललिता ने अपने पति के गमछे के दोनों छोरों पर सरसों बाँध दी जो आते-जाते समय गिरती रही। विद्यापति नीलमाधव के दर्शन कर लौट आया। कुछ दिनों बाद सरसों के बीज से अंकुर निकले और बड़े होकर पीले फूलों की पगडंडी स्पष्ट दिखाई देने लगी। विद्यापति अब स्वयं रास्ता पहचानकर अकेले निकला और नीलमाधव के दर्शन कर उस स्थल का पता पाने में सफल हो गया। वह लौटकर अवन्ती आया और राजा को समाचार सुनाया। राजा इन्द्रद्युम्न उनके साथ नीलांचल आए। जब वे उस स्थान तक पहुँचे, तब तक गोपनीयता नष्ट होते ही नीलमाधव अन्तर्ध्यान हो चुके थे। राजा को केवल निराशा ही हाथ लगी।

एक रात राजा को एक दिव्यवाणी सुनाई दी कि समुद्र तट पर उन्हें एक पवित्र दारू लट्ठा तैरता मिलेगा। उसकी देव प्रतिमा बनाकर वह उन्हें प्रतिष्ठित करें। कहा जाता है कि राजा इन्द्रद्युम्न ने जल में तैरते हुए उस काष्ठ को लाकर जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा की प्रतिमाएँ बनवाईं। इन्द्रलोक जाकर ब्रह्माजी को साथ लाकर उन विग्रहों में प्राण-प्रतिष्ठा करवाई। आज भी श्री मन्दिर प्रांगण का कल्पवट आदि इस पौराणिक कथा को सत्य रूप प्रदान करते हैं।

परम्परा

'जगन्नाथ धर्म' नाम लेकर कुछ लोग प्रयत्नशील हैं, एक नये धर्म का अस्तित्व लोग जानें। इस संबंध में धर्म के लिए आवश्यक उपादानों को जगा रहे हैं। लेकिन मुश्किल तब होती है, जब स्वयं जगन्नाथ किसी सीमा में नहीं बंध पाते। तो फिर एक धर्म का नाम लेकर उस परिभाषा में उन्हें सीमित करने का प्रयास कैसे सफल होगा? जबरन की जोड़-तोड़ भी कोई खास फलप्रद नहीं होगी। वरन् इन्हें यों ही अनगढ़, अरूप रहने दें। ऐतिहासिक पर्यालोचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कैसे विभिन्न राजनैतिक शासकों, धर्माचार्यों, समाज संस्कारकों और अन्य विद्वानों का पुरी में आगमन होता रहा है। उनके अपने चरण चिन्ह इस शरधा बाले में मिलते रहे। आज किसी को अलग-अलग कर छांटना दुरुह होगा यह कार्य, असंभव नहीं। इस संदर्भ में पुरी में निर्मित असंख्य मठ-मंदिर- आश्रम एक बहुत बड़ा प्रमाण हैं। इसके अलावा श्रीमंदिर में स्थापित विग्रहों की समय-समय पर घटा-बढ़ी होती रही है। सबसे बड़ी बात यह है कि श्रीमंदिर की दैनंदिन नीतियों, पर्व-त्यौहारों एवं यहाँ प्रचलित असंख्य

जगन्नाथजी को प्रतिदिन गोपाल वल्लभ भोग, सकाल धूप भोग, छत्र भोग, मध्याह्न भोग,

मान्यताओं-परम्पराओं को परखने पर भी इस बात का खुलासा हो जाता है कि पुरी न केवल उत्तर दक्षिण के बीच भौगोलिक संगम है, वरन् सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक दृष्टि से भी संयोजक मंडल के रूप में कार्य कर रहा है। विन्ध्याचल चाहे उत्तर दक्षिण के बीच विभाजित रेखा खींचता हो, पर यहाँ आकर वह भी कुछ झुक जाता है, मार्ग प्रशस्त कर देता है आवागमन, आदान-प्रदान और समझ-बूझ का।

धर्म के रूप में जगन्नाथ जी को मान्यता नहीं मिल सकी। क्यों? बहुत संभव है ऐसी कोई विशेषता अभी जगन्नाथ जी में नहीं मिली कि उस धर्म और उस देवता को औरों से अलग कहें। अगर अन्य किसी धर्म का सारतत्व यहाँ मिल जाता है तो फिर इसे अलग कैसे मानेंगे, अर्थात् जगन्नाथ धर्म में विभिन्न प्रचलित महत्वपूर्ण धर्मों के लक्षण उपलब्ध हैं, यहाँ उनके तत्व प्रायः मिल जाते हैं। उसी तरह यहाँ धार्मिक कोई संकीर्णता भी तो नहीं मिल रही। किसी का अलग अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए औरों से उसे भिन्न देखना होगा। इस प्रकार का हर प्रयास जगन्नाथ जी को सीमित, संकुचित, नियमित, रक्षित और लध्वित ही करेगा। अतः जगन्नाथ की धर्म-दर्शन संकीर्ण स्वकीय विशेषताओं पर प्रकाश डालना उचित होगा। उसी तरह उसमें विश्व के विभिन्न धर्म सम्प्रदायों का परिप्रकाश कैसे हुआ है, यह देखना अधिक समीचीन होगा। यह कोई सरोवर नहीं, एक धारा है, प्रवाह है। इसके मूल उत्स तक पहुँचना या उसे देखना चाहे असंभव हो, पर इस धारा को तो स्पष्टतः देखा जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है।

जगन्नाथ को लेकर धर्माधिकारियों, पंडितों, गवेषकों, साहित्यिकों एवं विद्वानों के बीच काफी मत पार्थक्य हैं। इसके लिए वे विविध परम्पराओं, किंवदंतियों, पुराण-काव्य-कविताओं, मंदिर, शिलालेखों, ताड़पत्र पोथियों के प्रमाण देते हैं। इनमें सर्वाधिक वैविध्य वर्तमान पूजित चतुर्धा मूर्ति को लेकर सामने आता है। इतिहास के लंबे समय तक अंधकार ग्रस्त होने के कारण भी तथ्य परिवेषण अनुमानों से आहरित कर दिया जाता है। ऐसे समय में अंतिम सत्य तक कोई नहीं पहुँच पाता। फिर यह यात्रा भी बहुत लंबी है। प्राक् ऐतिहासिक युग से लेकर अब तक की। इसमें जगन्नाथजी पर जलवायु का ही प्रभाव लें तो एकदम बदल जाने

संध्या धूप भोग, बड़ सिंगार धूप भोग निवेदित किया जाता है।

में आश्चर्य नहीं होगा। यहाँ तो मंदिर ही दबा है, टूटा, उखड़ा है और बार-बार निर्मित हुआ है। आज भी यह पुनर्निर्माण की प्रक्रिया जारी है। दूसरी ओर धर्म-दर्शन और परम्पराओं के समन्वय की धारा है। यह युगों-युगों से बहती रही। कालावधि से बहुत कुछ समाहित करती रही। हालांकि पिछली डेढ़ सदी में यह धारा एक प्रकार से स्थिर हो गई है। अब ऐसे किसी परिवर्तन को ग्रहण करवाना आसान नहीं रहा।

हमने प्रारंभ में ही ऐतिहासिक पौराणिक सिंहावलोकन करते समय देखा- जगन्नाथजी के संबंध में प्रमुखता दो मतवादों की है- वैदिक देवता एवं शवर देवता के रूप में प्रारंभ। दोनों ने इतिहास के दस्तक देने से पूर्व की घटना है। वैदिक परम्परा में दारू रूप में प्रारंभिक जगन्नाथ पूजा की बात आती है। लेकिन शवर परम्परा में प्रस्तर पूजा से प्रारंभ होकर फिर दारू पूजा के रूप में विकसित होने की बात आती है। दोनों में एक से त्रिधा या चतुर्धा विकास की बात को मान्यता प्राप्त है। आदि रूप में चाहे दारू हो या प्रस्तर, जगन्नाथ जी एक ही थे। उसका रूप परिवर्तन होकर बहुविध रूप में पूजा जाना बाद की घटना है।

लेकिन इससे भी पहले की स्थिति भिन्न है। तब पुरी समुद्र तट से लेकर ईरान तक का सारा प्राय द्वीप अखंड क्षेत्र था। वृक्ष पूजा की ईरानी परम्परा का संबंध जगन्नाथ से है। यह सारा प्रकृति उपासक विशाल भूखंड अब विछिन्न हो गया है। हजारों वर्ष के व्यवधान में वृक्ष से दारू तक की यात्रा तो बहुत छोटी है, लेकिन इसी बीच अनेक छोटी-छोटी बातें आती गईं, किसी न किसी रूप में समाहित होती गईं। सारे तत्व वहाँ समाये हैं। हालांकि उन्हें किसी भी तत्व में समाहित करने की चेष्टा अटपटी लगेगी।

शवर पूजा के समय वे प्रस्तर प्रतिमा हैं। एक प्रकार से वह व्यक्तिगत देवता की तरह जो कि इस समय के वनवासी जीवन की परम्परा में प्रचलित था, जगन्नाथ व्यक्ति विशेष के उपासना के पात्र थे। लेकिन उनका सामाजिकरण करने का प्रयास हुआ। इसका विरोध हुआ। पूजा के लिए प्रस्तर प्रतिमा नहीं मिली और फिर दारू-महादारू को स्थापित किया गया। लेकिन उदारता यह रही कि दारू को उठाने के लिए एक ओर शवर दूसरी ओर आर्यों ने हाथ लगाया। यह संभवत: समन्वय का पहला चरण है। नीलमाधव से अब वे दारू देवता बन गए।

नवकलेवर के समय जगन्नाथजी को कुल 45 दिनों तक उनके बीमार कक्ष में

वन फलों की जगह अब उन्हें गुफा से निकाल महावेदी पर स्थापित कर दिया। एकांतवास का युग समाप्त हुआ। अब जगन्नाथ सर्वजन सुलभ हो गए। विशाल एक मंदिर बन गया। व्यवस्था बन गई।

लेकिन शुरू हो जाता है अंधकार युग। कुछ-कुछ पता नहीं चलता। बहुत बड़े ढूह में जगन्नाथ दब जाते हैं। जब पुन: मंदिर का शिखर घोड़े के टाप से टकराता है तो खोद कर मंदिर पुन: प्रतिष्ठित होता है। अब की बार प्रार्थना करते हैं- ये श्रीकृष्ण कहलाते हैं। गीता की शब्दावली स्वीकृत होती है। जगन्नाथ वृंदावन नाथ, गोपीनाथ, द्वारकानाथ आदि के रूप में पुन: अवस्थापित हो रहे हैं। जगन्नाथ जी कालस्रोत के इस बिंदु पर एक विशिष्ट आभायुक्त दिख रहे हैं। विष्णु पूजा का प्रथम पर्याय लुप्त हो जाता है। द्वितीय पर्याय में उसी का अनुसंधान कर कृष्ण पूजा में धर्म पर्यवसित होता है। यहाँ 'नमो ब्राह्मणदेवाय गो ब्राह्मण हिताय च' श्लोक से पूजा होती है। ब्राह्मण प्रधानता समाप्त होने के बाद जगन्नाथ को भी ब्राह्मणेत्तर धर्म का देवता बना लिया।

बौद्धों को ये बुद्ध स्वरूप में दर्शित हुए और त्रिरत्न अर्थात् धर्म, संघ और बुद्ध का एक वेदी पर आसीन रूप हो गया। यही रत्नवेदी है। ब्राह्मण धर्मावलंबियों ने हृदय से स्वीकारा है कि बुद्ध कलियुग में विष्णु के अवतार हैं। उन्हें जगन्नाथ में ही वह रूप मिलता है। दारू में जो अज्ञेय ब्रह्म है, उसे बुद्ध का अंश विशेष कहा गया है। नवकलेवर दारू का हो जाता है, किंतु बुद्ध का वह अंश पुन: नव दारू में प्रतिष्ठित हो जाता है। यहाँ एक अद्‌भुत बात देखने में आती है। संसार के सभी धर्मों में देवताओं को अमर कहा गया है। जगन्नाथ को एक निश्चित अवधि में कलेवर बदलते देखते हैं। इतना ही नहीं, उस मृत्यु के अवसर पर शोक पालन करने वाला परिवार भी है। पूरे विधि-विधान से आस्थाविश्वास से शोक मनाते हैं। फिर नये घर में, नव निर्मित दारू विग्रहों में स्थापना कर नवयौवन दर्शन होता है। इतना ही नहीं, अब वे साधारण जन के स्पर्श से दूर हट ऊँचे सिंहासन (रत्नवेदी) पर बैठे थे। अब वहाँ से अवतरण करते हैं। उस विराट मंदिर से बाहर आकर सब दर्शन कर सकें, सब स्पर्श कर सकें, इस स्थिति में रथारूढ़ होते हैं। रत्नवेदी पर जिन्हें स्पर्श कर लो तो सारा भोग अपवित्र हो जाता है, महास्नान प्रभु को करना पड़ता है, वे ही ठाकुर बाहर आकर सबके लिए अबाध उपलब्ध रहते

रखकर उनका आयुर्वेद सम्मत उपचार किया जाता है।

हैं। यहाँ उन्हें आलिंगन में भरने की विधि है। यहाँ बड़े-छोटे, ऊँच-नीच, अपने-पराये किसी तरह का भेदभाव नहीं रहता। एक महान लोक प्रतिनिधि की तरह सर्वसमक्ष विराजमान रहते हैं। उस महासमारोह में सबके लिए समान स्थान है, सम महत्व है।

जगन्नाथ शैव परम्परा में अति विशिष्ट माने जाते हैं। यहाँ आज भी प्रवेश के समय पहले काशी-विश्वनाथ का दर्शन किए बिना जगन्नाथ दर्शन निष्फल माना जाता है। इतना ही नहीं, महाप्रभु की चलंति प्रतिमा जग स्नान यात्रा के लिए निकलती है, तो पुरी के पाँच विशिष्ट शिवमंदिरों से प्रतिमाएँ भी साथ चलती हैं। बलभद्र को शिव स्वरूप पूजा जाता है और पुरी की अधिष्ठात्री देवी विमला उनकी शक्ति स्वरूपिणी पूजी जाती हैं। यह तो हुई परम्परा की बात। शास्त्रों में कहा है- हम (हरि-हर) में कोई भेद नहीं है। एक ही मूर्ति के दो भाग हुए हैं। रुद्र जो विष्णु सो। जैसे पवन और आकाश में अंतर नहीं होता, वैसे ही हम दोनों में कोई प्रभेद नहीं। यही अभेद आज भी स्वीकृत है जगन्नाथ मंदिर में। यह शिवलिंग मार्कण्डेय पुष्करिणी में स्थापित हुआ था। लेकिन पुरी में शिवालयों की ओर शिवलिंगों की कोई गिनती कर सकता है?

कोई तांत्रिक जब जगन्नाथ की ओर देखता है, उसे वे महाकाल भैरव के रूप में नमस्य लगते हैं। पास में विमला उनकी भैरवी है। यहाँ तांत्रिकता तो जगन्नाथ को अर्पित प्रसाद को महाप्रसाद का रूप देती है। श्रीक्षेत्र इनके लिए उड्डीयन तंत्र पीठ के नाम से पवित्र स्थल है। यहाँ प्रसाद सेवन की अद्‌भुत परम्परा है। वह न जूठा होता है, न उसमें जाति भेद की मान्यता है। सर्वमयता का यहाँ जीवंत रूप देख सकते हैं। यहाँ वामाचार पूजा की प्रच्छन्न रूप से प्रचलित है। श्रीमंदिर की स्थापना नवत्रिकोण विशिष्ट तांत्रिक चक्र पर हुई बताते हैं। इसके निकट ही अष्टदेवी यथा दक्षिण कालिका, रामचंडी, चर्चिका आदि देवी पीठों की स्थापना हुई है।

शैव, शाक्त एवं वैष्णव तीनों प्रमुख मतों का समन्वित रूप इस मंदिर में दिखाई दे सकता है। मंदिर में भोग मंडप की उत्तर की ओर द्वार के पास जो मूर्ति है वह कोणार्क की एक विशेष मूर्ति से मेल खाती है। यहाँ जगन्नाथ उपासना और शैवोपासना को संश्लिष्ट किया गया है। एक ओर शिवलिंग है, दूसरी ओर

जगन्नाथ, बीच में महिषासुर मर्दिनी अवस्थित हैं। शैव-शाक्त-वैष्णव तीनों मतों को एक पीठ, एक आसन, एक मंदिर में स्थापित कर पूजा जाना अत्यंत महत्व की चीज है। उस वातावरण में और भी अधिक, जहाँ कोई वैष्णव कभी शिव निर्माल्य को जीव पर भी नहीं रखेगा और शैव कभी उसे स्पर्श भी न करे। ऐसी कट्टरता के बीच तीनों को एक अभिन्न और अविच्छेद्य रूप में स्वीकृत करना एक अति विशिष्ट परम्परा का ही द्योतक है। जगन्नाथ जी के पास ऐसी स्पष्ट परम्परा स्वीकृत है। यहाँ इस तरह की किसी सांप्रदायिक संकीर्णता को कोई स्थान नहीं दिया गया।

जगन्नाथ दर्शन का एक और प्रकार है। त्रिदेव उपासक यहाँ आकर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तीनों को एकत्र देखते हैं। बलभद्र को शिव, सुभद्रा को ब्रह्मा एवं जगन्नाथ को विष्णु रूप में दर्शन करने की परम्परा है। इस त्रिदेव उपासकों में प्रचलित है कि ब्रह्मा शापवश नारी रूप में अवतरित हुए। अत: त्रिदेवों की मूर्ति में ब्रह्मा नारी रूप में विराजमान हैं।

जगन्नाथ में जैन मतावलंबियों के लिए नाथांत स्वयं जीनेश्वर हैं। जगतनाथ कहते हैं, यहाँ कैवल्य का प्रचलन उन्हें अपने कैवल्य का ही रूप मिलता है। उभय श्वेताम्बरी एवं दिगंबरी जैनों में जगन्नाथ पूजा है। यह कैवल्य (मोक्ष) प्राप्ति का मार्ग है। इंद्रिय दमन करते हुए कठोर योग साधना से निर्वाण प्राप्ति होती है। इस संबंध में रथयात्रा का स्वरूप जैनियों की रथयात्रा से बहुत साम्य रखता है। आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को ऋषभनाथ का गर्भ कल्याण दिवस मनाया जाता है। इस अवसर पर ऋषभदेव की रथयात्रा का विधान था। जगन्नाथ की स्नानयात्रा के समतुल्य जैनधर्म में प्रतिमाओं की स्नानयात्रा थी। कल्पवृक्ष की कल्पना भी जैनधर्म में मिलती है। त्रिमूर्ति को विद्वान सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र के साथ जोड़ते हैं। जगन्नाथ मंदिर में प्रवेश के समय जो सीढ़ियाँ हैं, उन्हें बाइस पावच्छ (या बाइस पाहाच) कहते हैं। इन्हें कुछ लोग बाईस तीर्थंकरों का प्रतीक मानते हैं। 'जीनत्व' की यह धारणा आजकल उतनी प्रचलित तो नहीं है, परंतु परम्परा में इसके चिन्ह वर्ण स्पष्टता से मिलते हैं। तभी तो बड़े-बड़े पंडितों ने जगन्नाथ और जैन मत के घनिष्ठ सम्पर्क को रेखांकित किया है।

बहुत लंबे समय तक बौद्ध प्रभाव में ओड़िशा रहा। जगन्नाथ का बौद्ध स्वरूप इस सारे समय में विशेष महत्व पा सका। ब्राह्मणेत्तर, अवैदिक दृष्टिकोण से जगन्नाथ का विधि-विधान बहुत-बहुत दिनों तक चला। अशोक का कलिंग युद्ध अगर वास्तविक घटना मान लेते हैं तो यहाँ बौद्धस्तूप निर्मित होने में कहाँ संदेह रह जाता है? भोले-भाले उत्कलवासियों ने स्तूप पर त्रिरत्न को ही जगन्नाथ मान कर पूजा चालू रखी। इधर बोधिसत्वों की पूजा चलती रही। शंकराचार्य के आगमन के बाद निश्चित रूप से बहुत बड़ा परिवर्तन संघटित हुआ। वरना उसके बाद सदियों तक भगवान शंकराचार्य और पादपद्माचार्य (उनके शिष्य) की लघु मूर्तियों की स्थापना रत्नवेदी पर क्यों होती? उनकी वहाँ पूजा होती रही। दशावतारों में बुद्ध आ गए। बहुत सहज भाव से जगन्नाथ पीठ को चार धाम में मोक्षदायी एक धाम की प्रतिष्ठा दी गई। स्वयं शंकराचार्य ने जगन्नाथ की स्तुति में लिखा, उनका स्वरूप स्पष्ट किया। उनका अल्पज्ञातरूप पुरुषोत्तम उन्होंने समाज के आगे रखा। ब्रह्म हैं जगन्नाथ और यहाँ दारू ब्रह्म है इस मतवाद को पुष्ट किया। इस तरह कहते हैं चैत्य या स्तूप का नवकलेवर होकर मंदिर बन गया। राजा प्रधान हो तो ऐसे समावेश स्वीकार्य होने में उतनी कठिनाई नहीं होती। गणप्रधान स्थिति में सब अगर अपने मत, अपनी धारणा, अपने विचार पर अटल रहें तो कोई किसी के लिए जगह नहीं देगा। शंकराचार्य द्वारा स्थापित गोवर्धन मठ ने पूर्वी भारत में अपनी अस्मिता लंबे समय तक बनाये रखी। बौद्धों ने ईश्वर के संबंध में जो मौन साथ रखा था, शंकर ने कहा- ईश्वर है, किंतु वह अविद्या कल्पित है। यही बात दारू ब्रह्म में घटित कर उन्हें सत्य, ज्ञान स्वरूप और अनंत बताया। अतः वे निर्गुण, निष्कल, सूक्ष्म, निर्विकल्प और निर्मल कहते हैं। पर रामानुजाचार्य ने इसी बात को भिन्न ढंग से कहा। ब्रह्म निर्गुण हैं, पर निर्गुण की उन्होंने एक रचनात्मक व्याख्या इस प्रकार की- 'ब्रह्म में निकृष्ट गुण या हेय गुण नहीं है।' अन्यथा ब्रह्म सगुण है। ईश्वर विग्रह धारण करता है। उसके स्वरूप की तरह उसका विग्रह नित्य एवं शुद्ध सत्व युक्त है। जगन्नाथ में पूजा अर्चन पांचरात्र पद्धति पर की जाने लगी। दारू ब्रह्म की चतुर्व्यूह कहकर एक अभिनव दृष्टि का परिचय दिया। संकर्षण यहाँ बलभद्र, वासुदेव यहाँ जगन्नाथ, प्रद्युम्न यहाँ सुभद्रा

और अनिरुद्ध यहाँ सुदर्शन रूप में विराजमान हैं। उन्होंने यहाँ एमार मठ स्थापित किया। उन्होंने बताया परमेश्वर की प्राप्ति ही जीव का परम लक्ष्य है। इसके लिए भक्ति को महत्व दिया। जगन्नाथ में अनन्य भक्ति और उसके प्रति आत्मसमर्पण की भावना को बल मिला। अब जगन्नाथ की नारायण और उनके साथ लक्ष्मी पूजा का समावेश हुआ। बाद में रामानंद ने जाति-पाँति के बंधन शिथिल किए। जगन्नाथ-बलभद्र-सुभद्रा अब राम, लक्ष्मण एवं जानकी की भी प्रतिकृतियाँ कहलाने लगीं। यह सीता-राम रूप और राधा-कृष्ण उपासना मान्य रहे लेकिन निंबर्काचार्य मूलतः ब्रह्म को सगुण मानते हैं। परमात्मा पूर्वज्ञ हैं और जीव अपूर्णज्ञ। यहाँ अब जगन्नाथ क्रमशः कृष्णरूप हो गए। साथ में, राधा पूजा का प्रधान्य बढ़ता गया। जब माधव ने भक्ति का प्रचार किया, जगन्नाथ को ही कृष्ण और कृष्ण को ही जगन्नाथ, अर्थात् वे स्वयं भगवान हैं, बाकी सब उनके अवतार हैं। वे परमतत्व हैं। लक्ष्मी को उनसे भिन्न कहा है। इसी बीच जयदेव की राधा-कृष्ण भक्ति भी जोर पकड़ती गई। जयदेव का गीतगोविंद आगे चलकर जगन्नाथ पूजा में काम आने लगा।

श्रीचैतन्य के आगमन तक भक्ति की पूर्व पीठिका बन चुकी थी। उधर परम्परागत महिमा धर्म के अनुयायी शिवोपासना की जगन्नाथ सेवा में रूपांतरित होने लगे। इधर जगन्नाथ पर पूर्ण प्राणों से आस्था रखते हुए उनके प्रति भक्ति भावना को सर्वाग्र महत्व दिया। उन्होंने शून्यपुरुष, शून्य ब्रह्म कहकर जगन्नाथ को निराकार और अद्वैत ब्रह्म कहा। साथ-साथ उन्हें जीव और परम का मिलित रूप कहा। इस परम की साधना, उपासना शुद्ध-भूत जीवन एवं आचरण से ही संभव है। यहाँ जगन्नाथ में ही सीता-राम समाये हैं, राधा-कृष्ण प्रतिभात होते हैं और स्थिति, सृष्टि एवं लय का समष्टिगत रूप दिखा रहा है। उन्होंने इसीलिए नकारात्मक रुख नहीं अपनाया। चैतन्य देव किसी राजकीय पृष्टपोषकता के मुखापेक्षी न थे। संयोगवश ऐसी परिस्थितियाँ हो गईं, राजकीय समर्थन अनायास उनके पीछे खड़ा हो गया। ज्ञानमिश्राभक्ति मार्गी एवं शुद्धा भक्ति पंथ अनुसरण करने वाले- सभी राधा-कृष्ण के नाम महात्म्य से अपना-अपना विश्लेषण देकर उद्‌बुद्ध थे। सबके आराध्य (चाहे राधा-कृष्ण हो, चाहे सीता-राम, चाहे शून्य

पुरुष हों चाहे अलेख ब्रह्म) जगन्नाथ हो गए। चैतन्यदेव ने अद्‌भुत धार्मिक विकल्प उत्पन्न कर दिया। राजा ही नहीं, सर्वजन का भी जगन्नाथ से अपना संबंध स्थापित हो गया, अति निबिड़ संबंध। यह उपासना का अभिनव रूप है। जगन्नाथ एक बार चाहे कोई किसी तरह सीमित करे, पर यथार्थत: वे सर्वसुलभ हो गए। जीवन और जगत में एकदम घुलमिल गए। सारे व्यवधान सारे अंतर समाप्त हो गए। इस समय मानो चरम स्थिति ही आ गई। तभी परवर्ती काल में राजकीय शक्ति क्षीण होती गई, लोप हुई, राज सत्ता का प्रभाव हल्का होता गया, पर जगन्नाथ रूपी राधा-कृष्ण के समन्वित अधरों की हँसी, नेत्रों का आकर्षण बढ़ता ही गया। कवि, कलाकार, जन सामान्य, दार्शनिक तत्ववेत्ता सब जगन्नाथमय हो गए। पिछली 3-4 सदियों में जगन्नाथ जितने जनमानस में व्याप्त हो गए, शायद इतना विस्तार और इतनी गहराई पहले कभी न मिली हो। अत: ध्यान में उच्च कीर्तन और एकांत साधना से सर्वसम्मुख नर्तन तक सब जगन्नाथ के आगे प्रेम भक्ति के महास्रोत के अंग हो गए।

थोड़ी कठिनाई मुगलशासन और अंग्रेज अधिकार के बाद आई। विग्रहों पर हुए बार-बार आक्रमण के कारण यह पूरी संस्था कई बार क्षतिग्रस्त हुई। बहुत दबाव पड़ा सारी व्यवस्था पर। चिंतन, आस्था, श्रद्धा और विश्वास तो बना रहा, पर जगन्नाथ की जो व्यापकता थी, उदारता थी, दृष्टिकोण पर वे सारी मूलभूत बातें इन प्रहारें से चरमराती रही। अत: जगन्नाथ का सर्व प्रसारी रूप बाधा प्राप्त हुआ। चैतन्य के बाद जो स्थिरता आ गई, सारी शक्ति उसी व्यवस्था, उसी परम्परा और धारणा को बनाये रखने में लग गई। नित नये परिवर्तनों के कारण विश्राम से बचने के लिए समन्वय की लंबी परम्परा को आगे बढ़ाने का अदम्य साहस रूक गया। लगता है जैसे वह स्रोत स्थिर हो गया। फिर भी महाप्रभु की चिरंतन लीला जारी है। वह सर्व विस्मय कर अम्लान हँसी वैसे ही विकीरित हो रही है। उनके दर्शन चिंतन मनन के क्षेत्र में कौन-सी दिशा अछूती रहती है? मानव जीवन, मनप्राण सबके लिए जगन्नाथ आनंद, उत्साह और प्रेरणा के उत्स बने हुए हैं।

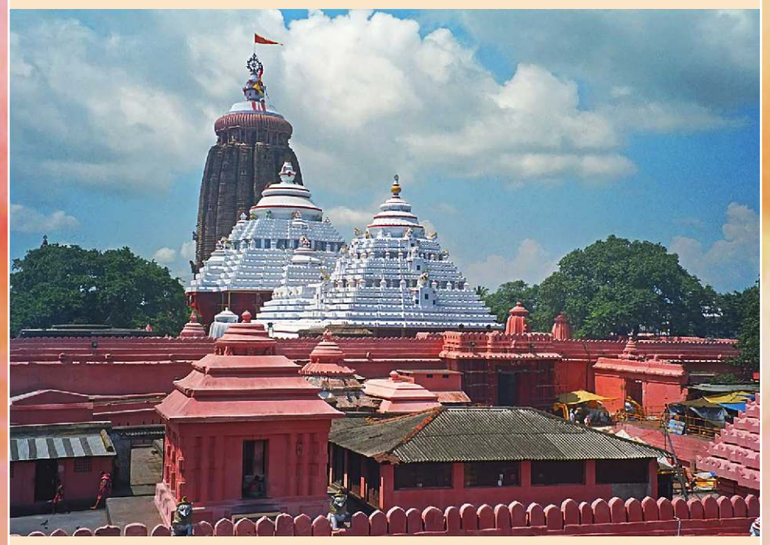

श्रीमन्दिर कला और वास्तुशिल्प

वास्तुशिल्प शास्त्र मन्दिर निर्माण विधि से सम्बन्धित एक प्राचीन और वैज्ञानिक शास्त्र है। इसका उद्‌गम स्थापत्य वेद से हुआ है, जो चार वेदों में से एक अथर्ववेद का हिस्सा है। रामायण में सात या आठ तल्ले भवनों का वर्णन है। महाभारत में मायासभा के निर्माण का वर्णन है, जिसमें माजा और इन्द्रप्रस्थ का निर्माण विश्वकर्मा के द्वारा हुआ था, जिसने द्वारका का निर्माण किया था। कश्यप शिल्प शास्त्र, वृहद संहिता, विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र, समरांगन सूत्रधार, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, अपराजिता प्रवक्षा, जय प्रवक्षा, प्रणय मंजरी, वास्तुशास्त्र, मायावास्तु और भृगु संहिता आदि में मन्दिर आदि निर्माण का वर्णन है। ऋषि-मुनियों का भी वास्तु शिल्प शास्त्र को समृद्ध करने में बहुत बड़ा योगदान रहा है, जिनमें प्रमुख हैं- भृगु, बृहस्पति, शुक्र, कश्यप, वशिष्ठ, अत्रि, माजा, विश्वकर्मा, वराहमिहिर और भोज आदि।

19वीं शताब्दी का अंत और 20वीं शताब्दी का प्रारम्भकाल पाश्चात्य सभ्यता

के प्रभावों में आ गया, जिसके फलस्वरूप वैदिक जीवन यापन करने वाले लोगों को पूरी तरह से निराश कर दिया, लेकिन परिवर्तन के चक्र ने 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक बार फिर हमारी गौरवशाली प्राचीन भारतीय संस्कृति को जीवनदान दिया, जिसके अन्तर्गत अनेक मन्दिर आदि का निर्माण वास्तु शिल्प शास्त्र के आधार पर शुरू हुआ।

वास्तुशिल्प शास्त्र अपने आप में विज्ञान, कला, ज्योतिष आदि का सम्मिश्रण है। जानने वाले लोग जानते हैं कि वर्तमान श्रीमन्दिर का निर्माण गंग वंश के प्रतापी राजा चोलगंग देव के द्वारा 12वीं शताब्दी में हुआ था। यह मन्दिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला का बेजोड़ उदाहरण है। जहाँ तक वास्तुशिल्प शास्त्र के आधार पर श्रीमन्दिर के मूल्यांकन की बात है, वास्तुशिल्प शास्त्र के करीब-करीब सभी मानदण्डों का इसके निर्माण में पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

वास्तुशिल्प शास्त्र मानता है कि मन्दिर का निर्माण खुले विशाल प्रांगण में होना चाहिए। श्रीमन्दिर 10 एकड़ में फैले खुले विशाल प्रांगण में अवस्थित है। वास्तुशिल्प शास्त्र के अनुसार मन्दिर के मुख्य प्रवेश द्वार चारों दिशाओं में खुले होने चाहिएं, जिसमें पूर्व दिशा में अत्युत्तम माना गया है। श्रीमन्दिर के भी चार द्वार हैं, जिसमें पूर्व स्थित सिंहद्वार मुख्यद्वार है। वास्तुशिल्प शास्त्र मानता है कि पाकशाला पूर्वी-दक्षिणी कोने पर होनी चाहिए। श्रीमन्दिर की पाकशाला भी श्रीमन्दिर के पूर्वी-दक्षिणी कोने पर स्थित है। वास्तुशिल्प शास्त्र के अनुसार मुख्यद्वारों के सामने कुछ न कुछ मूर्तियाँ होनी चाहिएं। श्रीमन्दिर के सभी द्वारों पर अलग-अलग मूर्तियाँ निर्मित हैं, जिनमें दोनों तरफ सिंह, अश्व, व्याघ्र और हस्ती हैं। वास्तुशिल्प शास्त्र मानता है कि मन्दिर के ऊपर सुन्दर मूर्तियाँ, आकृतियाँ आदि खुदी होनी चाहिएं। श्रीमन्दिर के बाहरी भागों पर भी सुन्दर मूर्तियाँ आदि गढ़ी हुई हैं।

वास्तुशिल्प शास्त्र के अनुसार नीम, पीपल, तुलसी, नारियल, पान का पत्ता, सुपाड़ी, चन्दन, आम, बरगद के वृक्ष पवित्र माने जाते हैं। श्रीमन्दिर की रत्नवेदी पर प्रतिष्ठित तीनों विग्रह नीम काष्ठ के ही हैं। पूजा और पर्यावरण की सुरक्षा आदि से सम्बन्धित उपर्युक्त सभी पवित्र पेड़-पौधों को श्रीक्षेत्र में देखा जा सकता है।

सुभद्रा माँ स्वयं में विष्णु और धर्म की प्रतीक हैं।

वास्तुशिल्प शास्त्र के अनुसार, देव-प्रतिमाओं के मन्दिर निर्माण आदि में वैसे वृक्षों की लकड़ियों की चर्चा है, जिन्हें नर वृक्ष और मादा वृक्ष मानते हैं। अगर वृक्ष की पत्तियों में सिराओं की संख्या बायीं तरफ की तुलना में दाहिनी तरफ में ज्यादा होती है तो उसे नर वृक्ष माना जाता है। ठीक उसी प्रकार सिराओं की संख्या दाहिनी तरफ की तुलना में बायीं तरफ जब ज्यादा होती है, तब उस वृक्ष को मादा वृक्ष माना जाता है। इसी प्रकार सिराओं की संख्या के आधार पर भी नर और मादा वृक्षों की पहचान की जाती है और मन्दिर के दरवाजों आदि पर उसी प्रकार की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। श्रीमन्दिर के सभी देव-देवियों के दरवाजों पर अर्थात् देवताओं के दरवाजों पर पुरुष जाति के वृक्षों की लकड़ियों का प्रयोग किया गया है तथा देवियों के दरवाजों पर मादा जाति के वृक्षों की लकड़ियों का प्रयोग किया गया है।

इसी प्रकार वास्तुशिल्प शास्त्र पत्थरों की पुरुष और स्त्री जाति की भी बात बतलाता है। इसी पहचान पत्थरों पर विशेष किस्म के हथियारों से चोट करके की जाती है। पुरुष जाति के पत्थरों का प्रयोग देव प्रतिमाओं के निर्माण में और नारी जाति के पत्थरों का प्रयोग देवियों की प्रतिमाओं के निर्माण में किया जाता है। श्रीमन्दिर की मूर्तियाँ इस आधार पर भी खरी उतरती हैं।

इसी प्रकार श्रीक्षेत्र में अवस्थित मठों, तालाबों, समुद्र तट और नदी आदि का मूल्यांकन करने पर पता चलता है कि पूरा श्रीक्षेत्र और श्रीमन्दिर वास्तुशिल्प शास्त्र के आधार पर ही निर्मित है, लेकिन जिस तरह से यहाँ पूजा-अर्चना की कोई सुनिश्चित विधि नहीं है, फिर भी अत्युत्तम व्यवस्था मानी जाती है, ठीक उसी प्रकार वास्तुशिल्प शास्त्र की जानकारी के अभाव में भी यहाँ की सम्पूर्ण व्यवस्था अपने आप महाप्रभु की कृपा से वास्तुशिल्प शास्त्र पर ही निर्मित है।

बलभद्रजी स्वयं में ब्रह्मा एवं संघ के प्रतीक हैं।

इतिहास के झरोखे से.....

जगन्नाथ जी के संबंध में 'इदंमित्यं न जाय कहि कोई' वाली बात सत्य है। या यों कह लें 'नेति-नेति'। लगता है मानव इतिहास जैसे-जैसे आगे बढ़ता रहा, जगन्नाथ में सारे परिवर्तनों का समावेश होता गया। आज तक कहीं उस परिवर्तन को विराम नहीं लगा। यह बात दूसरी है कि इस यात्रा को व्यवस्थित ढंग से कालक्रमानुसार लिख पाना कठिन पड़ रहा है। सचमुच जगन्नाथ का रूप-रंग, आकार-प्रकार ही नहीं, उनका इतिहास और दर्शन भी खूब गुह्य है। उपासना और धर्म के संबंध में कई तरह के विचार मिलते हैं। विभिन्न धर्म-दर्शन, विचारधारा और परम्पराओं का इस प्रकार यहाँ समावेश हुआ है कि जगन्नाथ सचमुच जगन्नाथ हो गए हैं। नीलांचल-नाथ, उत्कल-नाथ, या भारत-नाथ नहीं, वे जगन्नाथ कहलाते हैं। यहाँ प्रचलित विभिन्न परम्पराओं, आचारों एवं अन्य मौखिक, लिखित, खोदित प्रभावों के आधार उनके इस बहुविध आयाम के दर्शन करना समीचीन होगा।

सर्वाधिक प्रचलित मत जगन्नाथ को कृष्णरूप में दर्शन करने को लेकर है। यद्यपि कृष्णलीला के तीन प्रमुख स्थल- वृन्दावन, मथुरा एवं द्वारका माने जाते हैं। यह लीला द्वापर की है, पर कलियुग में श्रीकृष्ण का लीला स्थल पुरी ही कहा गया है। अत: कृष्ण भक्तों के लिए उपरोक्त तीन स्थलों के समकक्ष ही पुरी का भी महत्व है। इस बात का प्रमाण पुराणों से भी मिलता है। संस्कृत पुराणों के बाद उड़िया पुराणों और काव्यों में तो इस बात की बहुत चर्चा हुई है।

स्कन्दपुराण और ब्रह्मपुराण में जो कथाएँ आती हैं, उसके आधार पर यहाँ पहले नीलमाधव की पूजा होती रही है। ये नीलमाधव ही विष्णु हैं। इनके अंतर्धान होने के बाद पुन: कृष्ण रूप में प्रकट हुए। बलराम, सुभद्रा एवं सुदर्शन के साथ

बलभद्र जी, सामवेद की चतुर्धा मूर्ति हैं।

श्रीकृष्ण के दिव्य सिंहासन पर आविर्भूत होने का वर्णन आता है। हालांकि ब्रह्मपुराण में कृष्ण, बलराम एवं सुभद्रा की चर्चा हुई है। पर स्कन्दपुराण में चतुर्धा मूर्ति का विष्णु के ही रूप में वर्णन हुआ है। पुराणों में इन मूर्तियों के असीम सौन्दर्य की चर्चा बार-बार हुई है। नीलमाधव की चर्चा नहीं मिलती क्योंकि इस प्रतिमा के दर्शन ही कितने लोगों को हुआ? बाद में त्रिधा या चतुर्धा मूर्ति सर्वलोक प्रिय हुई। इंद्रद्युम्न ने इसका विष्णु के रूप में पूजन और प्रतिष्ठा की। यही चतुर्व्यूह फिर कृष्ण, बलदेव, सुभद्रा एवं सुदर्शन रूप में प्रतिष्ठित हो गए।

कुछ लोग त्रिदेवों में इस त्रिमूर्ति की कल्पना करते हैं- ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही इस रत्नवेदी पर विराजमान हैं। इसके लिए वे बलदेव को शिव, सुभद्रा को ब्रह्मा और जगन्नाथ को विष्णु स्वरूप कहते हैं।

जो हो, पुरी ऐसा स्थल है जहाँ कभी सांप्रदायिक वैमनस्य नहीं मिलता। वैष्णव एवं शैव का भेदभाव दूर करने की व्यवस्था बहुत पहले से हो चुकी है। ब्रह्मपुराण के अनुसार मार्कण्डेय मुनि ने शिवमूर्ति की स्थापना कर शिवालय बनाया। तभी से यहाँ हरिहर उपासना की परम्परा शुरू हुई। हरि और हर में यहाँ कोई भेद नहीं रहता। 'रुद्र जो, विष्णु सो'- जैसे पवन और आकाश में कोई अंतर नहीं, वैसे ही हरि-हर भी एक मूर्ति के दो भाग हैं।

यहाँ की अधिष्ठात्री देवी विमला है। पुराणों में प्रमुख देवी पाठों में विमला का वर्णन 'गंगायां मंगलानाम् विमला पुरुषोत्तमे' हुआ है। जगन्नाथ को भैरव कहा गया है। यहाँ भोग लगने के बाद वह विमला को अर्पित होता है, इस प्रकार यह महाप्रसाद बनता है। शाक्त मत में भी आता है कि भैरवचक्र में ही महाप्रसाद बनता है। रत्न सिंहासन पर यंत्र बनाकर प्रतिमाओं की स्थापना की जाती है। इसके अलावा पूजा में कई तरह के तंत्र-मंत्रों का प्रयोग होता है। भोग के समय मद के बदले कांसे के बर्तन में डाब का पानी, आमिष की जगह उड़द और अदरख के पिठऊ अर्पित किये जाते हैं। इन सारी परम्पराओं से पुरी में शाक्त मत के प्रभाव को रेखांकित किया जा सकता है। कोणार्क स्थित एक मूर्ति का हवाला देकर विद्वानों ने यहाँ शैव, शाक्त एवं वैष्णवों के समन्वय को स्पष्ट किया है।

बाद में उड़िया पुराणकारों, काव्य रचयिताओं, साधक-संतों ने जगन्नाथ के

सुभद्रा माँ, ऋग्वेद की चतुर्धा मूर्ति हैं।

संबंध में असंख्य कल्पनाओं को रूप दिया है। संत बलराम दास को तो अपने नयन में ही त्रिमूर्ति के दर्शन होते हैं। वे कहते हैं- नेत्र में जो श्वेत अंश है, वह बलभद्र है, उस पर श्याम अंश सुभद्रा और केंद्र में जो पुत्तलिका है, वह जगन्नाथ है। एक और स्थान पर वे इस चतुर्धा मूर्ति में चारों वेदों के दर्शन करते हैं। बलभद्र-साम, सुभद्रा-ऋग्, जगन्नाथ-यजु, सुदर्शन अथर्ववेद स्वरूप हैं। दास ने इन चारों में चार-वर्ण दर्शन इस प्रकार किए हैं-

शुक्ल-वर्ण बलभद्र, पीतवर्ण जगन्नाथ,
हरितवर्णा सुभद्रा और लोहित वर्ण के सुदर्शन हैं।

चैतन्य महाप्रभु के बाद तो कृष्ण भक्तों के लिए पुरी का महत्व वृन्दावन से भी बढ़ जाता है। जगन्नाथ चरितामृत में जगन्नाथ और राधा को एक अंग कहा है। 'हरे राम कृष्ण हरे'- इस महामंत्र की संकल्पना चतुर्धा मूर्ति में की गई है। जगन्नाथ को गीता का पुरुषोत्तम कहा गया है। श्रीकृष्ण जब अर्जुन को कहते हैं- 'मैं स्वयं पुरुषोत्तम हूँ, तो कृष्ण साक्षात् परब्रह्म, अन्य अवतार इनके अंश ठहरे। इस दृष्टि से पंचसखाओं ने जगन्नाथ को पूर्ण ब्रह्म, भगवान पुरुषोत्तम कहा है। वे सारे अवतारों का मूल हैं। उन्हीं से राम कृष्ण अवतरित होकर पुनः उन्हीं में लीन हुए हैं। अतः वे किसी एक धर्म, संप्रदाय या जाति के नहीं। जगत के मूल पिंड हैं और कारणस्वरूप हैं। एक भक्त ने तो लिखा है-

जगा एक सोळ कळा। तहुँ कळा ए नंद बाळा।।

अर्थात् जगन्नाथ जी आप तो सोलह कला युक्त हैं। नंद के बालक (श्रीकृष्ण) उसकी एक कला मात्र हैं।

ओड़िशा में इधर निर्गुणिया संतों का भी काफी प्रभाव रहा है। वे जगन्नाथ को निराकार, निर्गुण, ब्रह्म, शून्य, अलेख बताते हैं। अतः जगन्नाथ में निर्गुण, निर्विशेष, ब्रह्मोपासना का भी विशिष्ट केंद्र है। इन्हें अनिर्दश्य, अव्यक्त, सर्वव्यापी, अचिंत्य,

जगन्नाथ जी, यजुर्वेद की चतुर्धा मूर्ति हैं।

कूटस्थ, अचल, ध्रुव, अक्षर ब्रह्म कहा गया है।

जब से बुद्ध भगवान को विष्णु के अवतारों में गिना जाने लगा है, जगन्नाथ को बुद्ध रूप दिया गया। जयदेव के गीतगोविंद में ऐसा श्लोक आता है। सरला दास ने भी जगन्नाथ कलियुग में बुद्धावतार की चर्चा की है। अच्चुतानंद एवं बलराम दास आदि भक्तों ने कहीं-कहीं जगन्नाथ के बौद्धावतार का उल्लेख किया है। इस संबंध में कल्पना यह है- बौद्धों के त्रिरत्न हैं- बुद्ध (जगन्नाथ), धर्म (सुभद्रा) और संघ (बलभद्र)। यहाँ का रथयात्रा उत्सव बुद्ध के जन्मोत्सव रूप में मनाते हैं। उसी तरह जाति भेद रहित महाप्रसाद सेवन की परम्परा का सम्पर्क बौद्ध परम्परा से बताते हैं।

कुछ विद्वान जगन्नाथ को 'जिन' प्रमाणित करते हैं। ज्ञानसिद्धि में लिखा है- 'प्रणिपत्य जगन्नाथं सर्व जिन विरचितं'। पुरी की रथयात्रा को जैनमतवादी चैत्रयात्रा का ही एक रूप बताते हैं। उसी तरह स्नानपूर्णिमा को जैनों के अभिषेक के साथ अभिन्नता दिखाने के प्रयास हुए हैं। 'कैवल्य' और 'पुरुषोत्तम' आदि शब्दों को भी जैन परम्परा से जोड़ कर देखा जाता है।

सर्वोपरि जगन्नाथ में प्रचलित पूजा एवं परम्पराओं को देखें तो गणपति, राम, नृसिंह, वराह, वामन- किसका रूप नहीं मिलेगा? जगन्नाथ ऐसा विराट मंत्र कहाँ? जगन्नाथ जैसे दूसरे जगन्नाथ ही हैं।

पौराणिक परम्पराओं से आगे आने पर जगन्नाथ जी का इतिहास और भी उलझ जाता है। लेकिन यहाँ 'मादला पांजी' हमारी बहुत कुछ सहायता करती है। उड़िया में कहावत है- 'मादळारे सबु अछि' अर्थात् इस पंजिका में सब कुछ है। ओड़िशा के राजवंशों का इतिहास, जगन्नाथ मंदिर की घटनावली, यहाँ के विधि-विधान आदि के लिए अधिकारिक जानकारी मादला पांजी से मिलती है। तालपत्र पर लिखी इस पौथी की परम्परा बहुत प्राचीन है। मंदिर के देवल-करण, मंदिर का दैनिक आय-व्यय इसमें लिखते। तड़ाउ-करण मंदिर के दैनिक राजभोग का विवरण लिखते। इसकी तीन प्रतियाँ बनती। एक रहती देवल करण के घर पर, एक तड़ाउकरण के घर और तीसरी प्रति जगन्नाथ मंदिर में। इस मंदिर की प्रमुख घटनाएँ और देश की विशिष्ट घटनाएँ भी लिपिबद्ध होती रहीं। लेकिन मत्तभानुदेव

सुदर्शन जी, अथर्ववेद की चतुर्धा मूर्ति हैं।

के समय फिरोजशाह ने जगन्नाथ मंदिर पर आक्रमण कर इन्हें बहुत नुकसान पहुँचाया। आगे चलकर फिर कालापहाड़ ने ध्वंस लीला चलाई। इस तरह एकाधिक बाार पांजी नष्ट हुई और पुनर्लिखित हुई। इसमें कभी-कभी तो स्मृति, जनश्रुति एवं परम्परा का सहारा लेना पड़ा। फलत: यत्रतत्र आशंकाएँ उठना स्वाभाविक है। परंतु सामान्य तथ्य अन्य ऐतिहासिक विवरणों से मेल खा जाते हैं, अत: मादला पांजी पर काफी हद तक निर्भर किया जा सकता है। गंगवंश के अनंग भीमदेव के समय से मादला की रचना हुई। परंतु बीच में विघ्न होने के कारण कुछ लोग इसके बहुत बाद में लिखे जाने की परम्परा की बात कहते हैं।

कुछ लोगों का अनुमान है कि महाराजा ययाति केशरी, जनमेजय अथवा चोड़गंगदेव के समय से मादला के लिखने की परम्परा का श्रीगणेश हुआ है। ऐसा लगता है कि सूर्यवंश से मंदिर की राजनीति, पर्व-त्यौहार एवं आय-व्यय। आर्थिक स्थिति के लिए मादला पर निर्भर कर सकते हैं। अनेक पौराणिक बातों का समावेश होने के साथ-साथ इतिहास सम्मत तथ्यों की भी कमी नहीं है। हालांकि अन्य सूत्रों से राजा-रजवाड़ों के राजत्व काल का क्रमवार एवं कालानुसार विवरण माना कठिन हो जाता है। शासन का काल निकालना कठिन होने के कारण राजत्व को शंका ग्रस्त बना देता है। फिर भी मादला ही उत्कल का सर्वाधिक प्रामाणिक इतिहास का स्रोत है।

शोभनदेव (छठी सदी) के शासनकाल में भारत में विदेशी शक-हूणों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। इनके एक सेनापति रक्तबाहु ने पुरी पर आक्रमण किया। इससे रक्षा के लिए शोभनदेव महाप्रभु को सोनपुर ले गए। 144 वर्ष तक ठाकुरजी वहाँ बरगद के नीचे पूजा पाते रहे। बाद में सूर्यवंशी राजा ययाति केशरी ने मूर्तियों का वहाँ से उद्धार कर पुन: उनकी प्रतिष्ठा की। इसीलिए इन्हें द्वितीय इंद्रद्युम्न कहा जाता है। यह घटना सातवीं सदी की है। ययाति केशरी ने जगन्नाथ के लिए जो मंदिर बनाया, वह अधिक दिन नहीं टिक सका। ग्यारहवीं सदी के अंत तक वह जीर्णशीर्ण हो गया। चोड़गंगदेव ने वहाँ एक ओर नया मंदिर बनवाया। इन्हीं के समय श्रीरामानुज पुरी पधारे थे। उस समय श्रीमंदिर में लक्ष्मीजी के मंदिर का निर्माण इन्होंने करवाया था। बाद में अनंग भीमदेव ने इस

जगन्नाथ जी पीतवर्ण वाले हैं।

मंदिर को वर्तमान स्वरूप दिया था। मंदिर के क्षेत्र में भैरव मूर्ति की स्थापना करवाई। स्मुख स्थित नाट मंदिर बनवाया। इसके अलावा मंदिर के अंदर अनेक विधि-विधान अनंगभीम देव के युग से प्रचलित हुए हैं। लेकिन भानुदेव तृतीय के समय में ओड़िशा पर घोर विपत्ति आई। फिरोजशाह ने आक्रमण कर अनेक मूर्तियों को ध्वंस किया। फिर जगन्नाथ जी की मूर्तियों को दिल्ली ले जाकर अपमान किया। संभवत: यह दुर्घटना 1358 की है। इतिहास ने करवट ली। सूर्यवंशी कपिलेंद्र देव के हाथ में शासन आया तो सारी स्थिति ही बदल गई। गंगा से सेतुबंध तक ओड़िशा की सीमा हो गई। जगन्नाथ ही इस समय स्वयं उत्कल के भाग्यविधाता हो गए। सारी विधियों एवं भोग-पूजा आदि विधानों की पुन: प्रतिष्ठा हुई। मंदिर के परकोटे का निर्माण कर मानो दृढ़ रक्षा कवच पहना दिया श्रीमंदिर को। आज भी वह अक्षुण्ण है, अभेद्य है। सम्राट अब जगन्नाथ के प्रथम सेवक बन गए। अत: उनकी शक्ति और क्षमता भी असीम हो गई।

कपिलेंद्र देव के उत्तराधिकारी पुरुषोत्तमदेव ने भोग मंडप और कूर्मवेढ़ा का निर्माण किया। कांची अभियान की सफलता के बाद अनेक मूर्तियाँ वहाँ से लाकर श्रीमंदिर में उनकी स्थापना करवाई। आज भी उन में श्रीमंदिर के कांचीगणेश प्रतिष्ठित हो पूजा पा रहे हैं। बाद में प्रतापरुद्र देव के समय में भी मंदिर की उन्नति का कार्य जारी रहा। गीतगोविंद गायन की परम्परा शुरू हुई। चैतन्यदेव से दीक्षित हो प्रतापरुद्र देव ने जगन्नाथ मंदिर को पूर्णत: वैष्णव ढंग पर संचालित करने की व्यवस्था की। इस समय सारे भारत से जगन्नाथ जी की महिमा और कीर्ति चरम सीमा पर पहुँच गई। यात्रियों और धर्मदर्शन के अनुसंघित्सुओं के लिए यह क्षेत्र अत्यंत महत्वपूर्ण बन गया।

परंतु इसके बाद फिर धूप-छाँव शुरू हो गई। सूर्यवंश के बाद भोईवंश का शासन शुरू हुआ। इस समय बार-बार के मुगल आक्रमणों के कारण जगन्नाथ जी को कई बार रत्न सिंहासन से स्थानांनतरित होना पड़ा। कई बार सिंहद्वार तोड़ा गया। जगन्नाथ जी के अमाप धन-रत्न भंडार को लूटा गया। मूर्तियों को ध्वंस किया गया। सर्वाधिक विनाशकारी था बंगाल के नवाब के एक सेनापति कालापहाड़ का आक्रमण। 1568 में मुकुंददेव इसे विफल नहीं कर सके।

बलभद्र जी शुक्ल वर्ण वाले हैं।

कालापहाड़ ने पहले कटक को ध्वसं किया, फिर पुरी, कोणार्क, भुवनेश्वर तीनों तरफ तोड़-फोड़ मचाई। कई मन सोने की मूर्तियों को लूट लिया। 'हमारे बलियार भुज के रहते कौन हमें छू सकता है?' इसी विश्वास को पकड़कर सब मूक दर्शक बने देखते रहे। मूर्तियाँ टूटती गईं, मंदिर उजाड़ हो गया। जगन्नाथ जी को हाथ से बाँध सड़क पर घसीटा गया। द्वेषवश जगन्नाथ जी की मूर्ति की जैसी दुर्दशा हुई, इतिहास में इसका कोई अन्य उदाहरण पाना कठिन होगा। कहते हैं इसके बाद जब दारू ब्रह्म को गंगा तट पर ले जाकर दग्ध किया गया, तब सेनापति के शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो गए। दारु दग्ध नहीं हुआ। एक भक्त विशर महांती ने कौशल से अवशिष्ट अंश को उठाकर अपने इकतारे में छुपा लिया। उसी को लाकर पुनः बाद में प्रतिष्ठा हुई। राजा रामचंद्र देव के समय में 1578 ई. में अकबर के सेनापति मानसिंह की पत्नी गौरी देवी ने श्रीमंदिर में मुक्ति मंडप का निर्माण कराया था। इसके बाद रामचंद्रदेव ने राजकीय भोज की परम्परा पुनः प्रचलित कराई। दामोदर चंपतिराय ने श्रीमंदिर पर नीलचक्र लगवाया। लेकिन सत्रहवीं सदी के प्रारंभ में फिर बंगाल की सीमा पर गड़बड़ी होने के कारण पुरी पर संकट पहुँच गया। दर्शन के बहाने मंदिर में प्रवेश कर अकथनीय उत्पात मचाया। करोड़ों की संपत्ति लूट ली। रथ जला डाले। खोर्धा के पुरुषोत्तम द्वितीय ने आकर मुकाबला किया। लंबे समय तक आक्रमण जारी रहा। लेकिन कटक से हाशिम खाँ की सेना आने के बाद पुरुषोत्तम देव को संधि करनी पड़ी। आठ महीने तक देव विग्रह मंदिर से बाहर रहे। शीतल भोग लगा। अनेक सैन्य हताहत हुए। इसके बाद टोडरमल के पुत्र कल्याण मल ने भी आक्रमण किया, पर वे सफल नहीं रहे। फिर औरंगजेब के निर्देश पर एकराम खाँ ने 1698 में मंदिर पर कुदृष्टि उठाई। यद्यपि देव विग्रहों को स्थानांनतरित कर दिया गया था। पर धन-संपत्ति की रक्षा दिव्य सिंह देव के हाथों नहीं हो पाई। 1713 में शुजाउद्दीन ने और 1733 में तकी खाँ ने खुर्धा के राजा पर आक्रमण किया। इसी में

माँ सुभद्रा हरित वर्ण वाले हैं।

जगन्नाथ जी भी लपेट में आ गए।

लूटमार, तोड़-फोड़, ध्वंस-विनाश की लंबी परम्परा के बाद मराठों की मलहम लगती है। एक बहुत बड़े आदर्श को तोड़ने में ये आक्रमण सफल रहे। प्रतापरुद्र देव द्वारा हथियार डालकर धर्म शासन का गलत अर्थ लगा लिया गया। एक दुर्धर्ष रणपटु शक्ति ताश के पत्तों की तरह बार-बार विदेशी आक्रमण से जगन्नाथ की रक्षा में ही अपना सर्वस्व लगाती रही। आगे बढ़ कर छा जाने वाली मनोवृत्ति ही नहीं रह गई। अतः 'कपूर उड़ गया, कपड़ा रह गया'- वाली कहावत हो गई।

मराठों ने भारत में धर्म और दर्शन के इस महामेरु को पुनः श्रद्धा, सम्मान और सुअवसर दिया। स्वर्ण लक्ष्मी जी का निर्माण करवाकर मंदिर में जगन्नाथ जी के पास प्रतिष्ठा हुई। पर्व-त्यौहारों की पुनः व्यवस्था हुई। मंदिर की खोई हुई श्री क्रमशः लौट आई। अहिल्याबाई ने स्वयं आकर जगन्नाथ जी के चरणों में साष्टांग प्रणिपात किया। अनेक धर्मशालाएँ बनवाईं, मठमंदिरों का उद्धार किया गया। पिछले ढाई सौ वर्ष में लगी कालिख कोई सहज ही पुँछ सकती थी? मंदिर पर चूना लगा। पचास वर्ष (1751 से 1803) के शासन काल में मंदिर की पताका फिर से मुक्त आकाश में गौरव से फहराने लगी। जितनी जमीन छीन ली गई थी, पुनः बहाल की गई। रत्न भंडार को भी समृद्ध कर दिया गया। मराठों के काल में कुछ अर्थ प्रतिवर्ष मंदिर के दैनंदिन विधिविधान के लिए देने का प्रावधान भी बना। मंदिर की न केवल मरम्मत की गई, मेघनाद प्राचीर जैसी विशाल एवं सुदृढ़ दीवार से अभेद्य सुरक्षा प्रदान की गई। जगन्नाथ मंदिर प्रांगण में कुछेक नए मंदिरों का भी निर्माण हुआ। कई नई परम्पराओं का समावेश हुआ।

ओड़िशा में 1803 में एक और मोड़ आया। पहले विदेशी शासक तलवार लेकर आया था। अब की बार वह व्यवसायी भी था। अतः उनकी दृष्टि हानि-लाभ की ओर अधिक रही। अंग्रेजों ने चतुराई से ओड़िशा पर अधिकार कर लिया। यहाँ से मराठा शासन का लोप हो गया। अंग्रेजों ने अब मंदिर को भी अपने अधिकार में ले लिया। इसमें मालूद के जागीरदार फतेह मुहम्मद ने मदद की। बिना किसी खून-खराबे के कर्नल हरकोर्ट पुरी पहुँच गए। जागीरदार को बख्शीश में काफी जमीन मिली। यह आज भी 'नमक हराम जागीर' के नाम से परिचित हैं। लेकिन

सुदर्शन जी लोहित वर्ण वाले हैं।

अंग्रेज इस मामले में अधिक सतर्क थे। वे मंदिर की रीति-नीति या प्रशासन में हस्तक्षेप करने नहीं आए थे। 'जगर नोट' में उलझना उन्हें उचित नहीं लगा। अत: अधिकांश नीतियाँ जारी रहने दीं। कर प्रथा का ढाँचा भी अपरिवर्तित रहा। साथ ही, वार्षिक आर्थिक मदद भी बंद नहीं हुई। लेकिन 1845 में वार्षिक आय का हिसाब आंका गया। सरकार से फिर उसमें से आर्थिक सहायता कम कर दी गई। इसके बाद सरकारी पुलिस नियुक्त कर उसके वेतन का बहाना बनाकर फिर दुबारा कटौती की गई। इंग्लैंड में चर्च और पादरियों का दबाव था कि गैर ईसाई पूजा स्थल का अंग्रेज सरकार क्यों भरण-पोषण करे? सरकार को झुकना पड़ा। मंदिर के लिए खुर्धा राजा को रहने के लिए पुरी आना पड़ा। खुर्धा का राज तो विद्रोह के संदेह में चला गया था। गजपति महाराजा मंदिर के सुपरिटेंडेंट जरूर थे, मगर किसी इलाके के अधीश्वर नहीं रहे। लेकिन अंग्रेज बहादुर नाराज थे खुर्धा महाराज से। कानून रद्द कर महाराज की सत्ता अथवा सारे अधिकार छीन लिए। मुकुंददेव बालिग होने तक अंग्रेजों ने 1891 तक सीधे शासन किया। मुकुंददेव के बाद रामचंद्रदेव सुपरिटेंडेंट बने। कानून बनाकर सारा दायित्व उन पर न्यस्त कर दिया, उनके बाद वीरकिशोर देव को सुपरिटेंडेंट बनाया गया। एक एडमिनिस्ट्रेटिव ऑफिसर नियुक्त किया गया। उनके बाद दिव्यसिंह देव राजा बने। उनके पिता के समय मंदिर की बहुत सारी व्यवस्थाओं को लिखित रूप प्रदान कर एक सुनिश्चित व्यवस्था का सूत्रपात कर दिया। वही आज भी चली आ रही है। अब एक तरह का समझौता हो गया, जिसके अंतर्गत कानून बनाकर महाराज के दायित्व और उत्तराधिकार निश्चित किए गए। मंदिर संचालन संबंधी दायित्व और अधिकार स्पष्ट कर दिए गए। मामूली परिवर्तनों के साथ वे सब लागू हुए। इस प्रकार जगन्नाथ जी की बहुत पुरानी अलिखित परम्परा फिर से बहाल हुई। धार्मिक एवं नैतिक परम्पराओं को आधुनिक एवं कानूनी ढाँचों में पुन: व्याख्यायित किया गया था। बढ़ती हुई भौतिक अभिरूचि के आगे यह सब होना जरूरी भी था। जगन्नाथ जी की संपत्ति, नीति-नियमों में अनुशासन एवं जिम्मेदाराना भाव बनाये रखने के लिए नये कोड़ की आवश्यकता थी। सो मिला। स्वत: स्फूर्त भाव से अपना सब कुछ अर्पित करने की भावना को अब एक भिन्न मोड़ मिला।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजाओं का राज चला गया। पुरी महाराज का कौन-सा

जगन्नाथ जी मंदिर का पूर्व का सिंहद्वार - धर्म का प्रतीक है।

राज्य था जो छिनता? उनका तो जगन्नाथ जी की सेवा का अधिकार था। वह अब भी कायम रहा। सरकार द्वारा नियुक्त मंदिर प्रशासक सीधे दैनंदिन विधि-विधान के नियंत्रक जरूर हुए। परंतु जनता की आस्था और विश्वास के प्रतीक पुरी महाराज की क्षमता औपचारिक होते हुए भी अक्षुण्ण बनी रही। इसी बीच श्रीमंदिर की संपत्ति क्षीण होने लगी, जमीन से प्राप्त आय में कमी आती गई।

बहुत सारा परिवर्तन सभ्यता के प्रकाश में श्रीमंदिर को देखना पड़ा। यात्री-संख्या में बढ़ोतरी होती रही। तीर्थयात्रियों के साथ-साथ पर्यटक यात्रियों की संख्या भी आशातीत ढंग से बढ़ी। टूरिस्ट व्यवसाय पनपने के संग पुरी और श्रीमंदिर को भी देखने का नजरिया बदलने लगा। पुरातत्व वालों की दृष्टि इस ओर गई। मरम्मत एवं नवीकरण होने लगा। भवन निर्माण कलाकारों, वास्तुविदों एवं मूर्ति सौंदर्योपासकों, इतिहासकारों, नृतत्वविदों आदि ने अनेक चीजें ढूँढ़ी, पायी भी। मगर जगन्नाथ जी की उस भौतिकेत्तर आध्यात्मिक चेतना की ओर से क्रमश: ध्यान हटता गया। इक्कीसवीं सदी के चिंतन के अनुरूप आज चारों ओर जगन्नाथ के आधुनिकीकरण का प्रयास हो रहा है। देखना है इसे जगन्नाथ किस रूप में स्वीकार करते हैं। दूसरे शब्दों में इस नई वेशभूषा में जगन्नाथ कैसे लगते हैं- यह देखना अभी बाकी है। अब तक वे आध्यात्मिक एवं दैवी चेतना और शक्ति के रूप में वरेण्य रहे हैं। युग-युग में परिवर्तन को आत्मसात करने वाले जगदीश का नया रूप, नई वेशभूषा और नई मुद्रा अभी उभरना बाकी है। फिलहाल समूची व्यवस्था में सुधार के लिए क्रांतिकारी परिवर्तनों के प्रस्ताव रखे जा रहे हैं। कई कमेटियाँ बनाई गईं। असंख्य मत सामने आये। परंतु अभी भी सर्वसम्मत स्वरूप उभरकर आना बाकी है।

जगन्नाथ जी मंदिर का पश्चिम का व्याघ्र द्वार - वैराग्य का प्रतीक है।

कलियुग के एकमात्र पूर्ण दारुब्रह्म जगन्नाथजी का नवकलेवर-2015

स्कन्दपुराण के श्लोक सं. 28 से लेकर 39 में पुरुषोत्तम महात्म्य का स्पष्ट उल्लेख है जिसमें दारु मूर्ति विग्रह का वर्णन है। ऋग्वेद में महोदधि तट पर अपुरुषं दारु के प्राप्त होने की जानकारी मिलती है, जिससे विष्णुभक्त अवंती नरेश इद्रद्युम्न ने दारु देव विग्रहों का पहली बार पुरी धाम के गुण्डीचा घर में निर्माण कराया था। स्कन्दपुराण में यह भी वर्णित है कि पहले शबर राजा विश्वावसु द्वारा पूजित नीलमाधव मूर्ति के अन्तर्रान होने के उपरांत कालक्रम में दारु विग्रह चतुर्धा देव विग्रह जगन्नाथजी, बलभद्रजी, सुभद्रा देवी माँ और सुदर्शन भगवान के निर्माण की जानकारी मिलती है। कहते हैं कि प्राचीन काल में दारु अर्थात् वृक्ष की पूजा का प्रचलन सुदीर्घ अतीत से रहा है क्योंकि उस वक्त मनुष्य को उसकी आवश्यकता की अधिकांश चीजें दारु से ही मिलती थीं। पेड़-पौधों से ही मिलती थीं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि दारु का जगन्नाथ संस्कृति में अर्थ पवित्र नीम की लकड़ी से है जिससे प्रति दो मलमास यानि जब

जगन्नाथ जी मंदिर का दक्षिण का अश्व द्वार - ज्ञान का प्रतीक है।

दो आषाढ़ पड़ता है उस साल पुरी धाम के श्रीमंदिर के रत्नसिंहान पर विराजमान चतुर्धा देव विग्रहों का नवकलेवर होता है। पुराने दारु देव विग्रहों को हटाकर नये दारु से निर्मित देव विग्रहों को रत्नसिंहान पर विराजमान कराया जाता है जिसमें पुराने दारुविग्रहों से मात्र उनके ब्रह्मतत्व को निकालकर नये दारु देव विग्रहों में गोपनीय विधि से डाल दिया जाता है जिसे ही नवकलेवर कहते हैं।

दारुब्रह्म जगन्नाथो भगवान पुरुषोत्तमे।
क्षेत्रे नीलाचले क्षारार्णवतीरे विराजते॥
महाविभूतिमान् राज्यमौत्कलं पालयन्।
व्यंजयन् निज महात्म्यं सदा सेवकवत्सलः॥

भारतवर्ष जहाँ की पवित्र धरा-धाम पर एक तरफ जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, रसिक शिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण, भगवान गौतमबुद्ध और सत्य, अहिंसा व त्याग के साक्षात पुजारी महात्मा गाँधी आदि ने अवतार लिया, वहीं के महाप्रभु जगन्नाथजी के देश ओडिशा में कलियुग के एकमात्र पूर्ण दारुब्रह्म के रूप में वहाँ की सांस्कृतिक नगरी साक्षात मर्त्य बैकुण्ठ पुरी धाम के श्रीमंदिर के रत्नवेदी पर अपने विग्रह रुप में विराजमान होकर जगत के नाथ श्री श्री जगन्नाथजी भगवान अपने बड़े भाई बलभद्रजी, छोटी बहन सुभद्राजी और सुदर्शन भगवान के साथ दारुविग्रह रूप में विराजमान होकर प्रतिदिन अपने दर्शन मात्र से विश्वशांति, मैत्री और एकता का महाप्रसाद के रूप में पावन संदेश भी देते हैं।

यह सच है कि आर्यावर्त विश्व का एकमात्र समृद्ध संस्कृति प्रधान देश है, जहाँ की हिन्दू संस्कृति में व्रत-त्यौहार और जिसे महाप्रभु जगन्नाथजी की साल के 12 महीनों की 13 यात्रा कहा जाता है, ये सभी नई प्रेरणा एवं स्फूर्ति के संवाहक हैं। वास्तव में भारतीय संस्कृति का पर्याय माना जाना जिनकी संस्कृति में भारतीय संस्कृति की तरह विशाल भारत को एकसूत्र में बाँधने का यथार्थ संदेश है। 2015 वर्ष जगन्नाथजी के नवकलेवर का वर्ष है अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों का त्यागकर नया वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी प्रकार जगन्नाथजी अपने पुराने दारु विग्रहों का त्यागकर नये दारु विग्रहों को अपनाते हैं। ऐसी मान्यता है कि जिस वर्ष जोड़ा आषाढ़ पड़ता है, उसी वर्ष ही जगन्नाथजी

जगन्नाथ जी मंदिर का उत्तर का हस्ती द्वार - ऐश्वर्य का प्रतीक है।

का पुरी धाम में नवकलेवर होता है। जगन्नाथ संस्कृति को जिसमें आदर्श जीवन मूल्यों, व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक के साथ-साथ आध्यात्मिक संस्कारों को जगन्नाथजी के पूर्ण दारुविग्रह रूप में पुरी धाम में नित्य देखने को मिलता है। भगवान जगन्नाथ एकमात्र आस्था और विश्वास के देवता हैं।

नवकलेवर की परम्परा: जगन्नाथजी के नवकलेवर की एक शास्त्रीय परम्परा है, जो पुरी धाम में इस वर्ष संपन्न हो रही है। मान्य परम्परानुसार श्रीमंदिर का भविष्यवक्ता खुरी नाहक सबसे पहले यह बताया कि जोड़ा आषाढ़ कब पड़ेगा। उसके उपरांत पुरी के गजपति महाराजा दिव्य सिंहदेवजी ने पुरी स्थित विभिन्न मठों के प्रतिनिधियों एवं श्रीमंदिर के मुख्य सेवायतों से विचार-विमर्श किया। नवकलेवर हेतु पवित्र दारु संग्रह हेतु तिथि निर्धारित किया।

चैत्र माह के शुक्ल पक्ष के 10वें दिन दोपहर को अर्थात् 29 मार्च, 2015 को श्रीमंदिर में पूजा के उपरांत तीन आज्ञा माल लाल रंग के धागे में गुंथा आज्ञामाला लाये, जिनके मध्य भाग में निर्माल्या बंधा हुआ था, उन्हें पति महापात्र दइतापतियों को देते हैं। सुदर्शनजी का आज्ञामाल वे स्वयं अपने पास रख लेते हैं। श्रीमंदिर के भीतरछु महापात्र पतिमहापात्र के सिर पर लाल साड़ी बाँधते हैं। दइतागण के सिर पर भी साड़ी बाँधी जाती है, जिसकी लंबाई चार फीट होती है जबकि पति महापात्र के सिर पर बाँधी जाने वाली साड़ी बड़ी होती है। इसके उपरांत यह छोटा जुलूस पुरी गजपति महाराजा के पास जाता है जो इनकी मंगलमय वनयज्ञ यात्रा हेतु इन्हें पान-सुपारी देते हैं। 29 मार्च को यह वनयज्ञ यात्रा आरंभ होकर 22 मई को संपन्न हो चुकी है। इस दौरान यह दल सबसे पहले काकटपुर माँ मंगला देवी के दर्शन करता है। वहाँ के देउली मठ में जो

पवित्र प्राची नदी तट पर ठहरते हैं। माँ मंगला उनसे प्रसन्न होकर उन्हें देव विग्रहों के दारु संग्रह हेतु निर्देश देती हैं।

जगन्नाथजी का नवकलेवर पुण्य भारत भूमि की सांस्कृतिक आस्था का साक्षात प्रमाण है जिसमें देव विग्रहों के नये दारु रूपी शरीर में प्रवेश करना, आत्मा और शरीर के संबंध और पुनर्जन्म को प्रतीकात्मक रूप से स्पष्ट करना है।

पुराण वर्णित कथा के आधार पर प्राचीन काल में जब समुद्र में बहता हुआ काष्ठ लट्ठ/दारु ओडिशा के महोदधि तट पर आया तो उसी से राजा इद्रद्युम्न ने 'विचित्र' नामक बढ़ई से देव विग्रह निर्माण कराया। प्राप्त जानकारी के आधार पर उस वक्त भी जोड़ा आषाढ़ का साल था और तभी से यह सुदीर्घ परम्परा पुरी धाम में नवकलेवर की चली आ रही है। जोड़ा आषाढ़ कम से कम 8 वर्ष, 11 वर्ष के अंतराल में और अधिक से अधिक 19 वर्ष के अंतराल में आता है। पुरी धाम में जिस दारु से देव विग्रहों का नवकलेवर होता है, वह नीम की लकड़ी होती है, जिसकी औसत आयु 12 साल ही आंकी गई है, इसीलिए जगन्नाथजी का नवकलेवर 12 साल से लेकर 19 साल के अंतराल पर ही आयोजित होता है।

अब तक 1733, 1744, 1752, 1790, 1809, 1828, 1836, 1855, 1874, 1904, 1912, 1931, 1950, 1969, 1996 और 2012 में पुरी धाम में देवविग्रहों का नवकलेवर हो चुका है। 2015 का नवकलेवर 29 मार्च, 2015 से आरंभ हो चुका है, जिसके पूर्ण होने में लगभग चार माह लगेंगे।

2015 नवकलेवर की मान्य औपचारिकताएँ–

1 वनयज्ञ यात्रा जो 29 मार्च से आरंभ होकर 22 मई, 2015 को संपन्न हो चुकी है। इस वनयात्रा में श्रीमंदिर के दइतापतिगण, ब्राह्मण, लेंका, देउलीकरण, तड़ाउकरण, विश्वकर्मा आदि मिलाकर कुल लगभग 200 लोग शामिल हुए, जिन्हें पुरी के गजपति महाराज के राजमहल के सामने गजपति महाराज श्री दिव्य सिंहदेवजी द्वारा अपराह्न बेला में सुपारी आदि प्रदान किया गया। श्रीमंदिर से चतुर्धा देव विग्रहों से चार आज्ञामाल उन्हें प्रदान किया गया। वनयज्ञ दल श्रीजगन्नाथ वल्लभ मठ में उस रात विश्राम किये। 30 मार्च, 2015 को आधी

रात के समय दइतापतियों एवं समस्त वनयात्री दल कोणार्क के समीप स्थित काकटपुर माँ मंगला मंदिर के पास प्राची नदी तट निर्मित देउली मठ में ठहरे, जहाँ पर वे अपनी दिनचर्या जगन्नाथजी एवं समस्त देव विग्रहों के भजन, पूजन एवं संकीर्तन आदि में व्यतीत किये। 1 अप्रैल को वनयात्रा दल नरुआ श्री शंकरेश्वर मंदिर में विश्राम किये। 2 अप्रैल को पुनः देउली मठ उनका आगमन हुआ। 3 अप्रैल को काकटपुर माँ मंगला की पूजा-अर्चनाकर उनकी आज्ञानुसार पुनः देउलीमठ में रात्रि विश्राम किये। 4 अप्रैल से लेकर 22 मई, 2015 तक चारों देव विग्रहों श्री सुदर्शनजी, देवी सुभद्रा माँ, भगवान बलभद्रजी और श्री जगन्नाथजी के नवकलेवर के लिए क्रमशः खोर्द्धा जिला और जगतसिंहपुर जिले में पैदल जा-जाकर पवित्र दारु अर्थात् नीम की लकड़ी का चयन किये। उनकी पूजा-अर्चना एवं यज्ञ आदि कर उसे काटकर काठ के ठेले, जिसे सगड़ कहा जाता है, उससे पुरी लाये।

श्रीमंदिर प्रशासन पुरी के प्राप्त जानकारी के आधार पर प्रभु सुदर्शन का दारु ओडिशा के खोर्द्धा जिला के गड़कंटुनिया नामक गाँव से मिला। माँ सुभद्रा देवी का दारु जगतसिंहपुर जिले के मजुराई, अड़ंगगढ़ में मिला। प्रभु बलभद्रजी का दारु जगतसिंहपुर जिले के माँ सारलापीठ, कनकपुर झंकड़ में मिला और महाप्रभु जगन्नाथजी का दारु जगतसिंहपुर जिले के हाथीसूड, खरीपड़िया में मिला। श्रीमंदिर प्रशासन पुरी धाम द्वारा जहाँ-जहाँ से चतुर्धा देव विग्रहों के नवकलेवर के लिए दारु मिला है, वहाँ के स्थानीय लोगों को 5-5 लाख रुपये प्रदान किया गया है।

सबसे आनन्द की बात यह देखने को मिली कि 29 मार्च से लेकर 22 मई, 21मई, 2015 तक पूरे ओडिशा में दारुयात्रा के दौरान पवित्र दारु दर्शन का माहौल रहा, जिसमें एक तरफ लगभग एक करोड़ जगन्नाथ भक्तों के लिए जगह-जगह पर शीतल जल, शर्बत, दही आदि का उत्तम इंतजाम अनेक जगन्नाथभक्तों द्वारा किया गया, वहीं ओडिशा के नवजात करीब दो साल के बच्चे से लेकर वयोवृद्ध लगभग 120 साल के लोगों ने पवित्र दारु के दर्शनकर अपने मानव जीवन को धन्य बना लिये।

मेघनाद प्राचीर की ऊँचाई लगभग 24 कीट है।

नवकलेवर के लिए जो वृक्ष काटा तथा उपयोग में लाया जाता है, उसमें निम्न लक्षण होने चाहिएं-

- वृक्ष नीम का होना चाहिए।
- वृक्ष के काण्ड की लम्बाई 7 फुट से 10 फुट के मध्य होनी चाहिए, वह सीधा और ठोस होना चाहिए।
- उसमें तीन से सात शाखाएँ तक होनी चाहिए।
- उस वृक्ष के निकट मन्दिर, मठ, नदी, तालाब, शमशान, दीमक की बाँबी, बेल का पेड़, वरुण का पेड़, साहाड़ा का पेड़, तुलसी का पौधा और गड्ढा होना चाहिए।
- उस दीमक की बाँबी या गड्ढे में साँप उस वृक्ष के रखवाले के रूप में रहना चाहिए।
- उस वृक्ष की कोई डाल कटी हुई नहीं होनी चाहिए। किसी प्रकार के कीड़े या जीव-जंतु द्वारा क्षत-विक्षत नहीं होना चाहिए और बिजली गिरने के कारण कहीं से क्षतिग्रस्त नहीं होना चाहिए।
- उस वृक्ष पर किसी पक्षी द्वारा कोई घोंसला नहीं बनाया हुआ होना चाहिए।
- वृक्ष के तने की मोटाई 2 मीटर से 3 मीटर के मध्य होनी चाहिए।
- वृक्ष पर शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिह्न मिलने चाहिएं।
- जगन्नाथ की दारू का रंग काला, बलभद्र की दारू का रंग श्वेत, सुभद्रा की दारू का रंग पीला और सुदर्शन की दारू का रंग लाल होना चाहिए।
- दारू का स्वाद खारा होने के बजाए थोड़ा मधुर होना चाहिए।

इस प्रकार नवकलेवर महाप्रभु जगन्नाथ के लौकिक स्वरूप की अलौकिक लीला है जो मानव और उनके आपसी तादातम्य संबंधों को स्पष्ट करती है, जिसमें यह शाश्वत सत्य है कि इस मृत्युलोक में जो भी जन्म लेगा, चाहे ईश्वर ही क्यों न हो, उन्हें भी अपना कलेवर परिवर्तन करना ही पड़ेगा। नवकलेवर वास्तव में दर्शन, जीवन दर्शन और आत्मा और परमात्मा के एकाकार स्वरूप का साक्षात उदाहरण है।

मेघनाद प्राचीर का निर्माण 1448 में राजा कपिलेंद्र देव ने किया था।

चित्रों में नवकलेवर 2015

भगवान विष्णु के 10 अवतार- मत्स्य, कच्छप, बराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बुद्ध, कल्कि अवतार।

ओडिशा का पुरी - शंख क्षेत्र कहलाता है

ओडिशा सन्मार्ग से साभार

ओडिशा का भुवनेश्वर – चक्र क्षेत्र कहलाता है।

ओडिशा का जाजपुर – गदा क्षेत्र कहलाता है

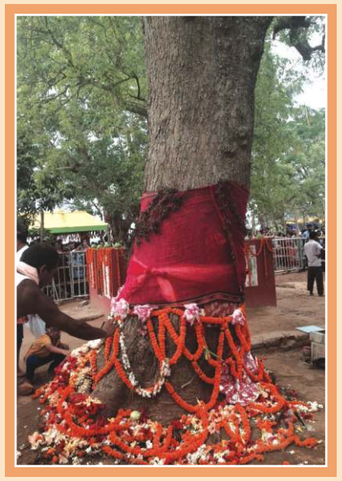

ओडिशा का कोणार्क – पद्म क्षेत्र कहलाता है।

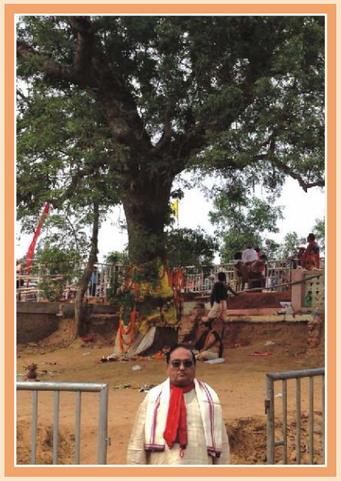

पुरी धाम का नाम दशावतार क्षेत्र भी है।

जगन्नाथपुरी एक धर्म कानन मानी जाती है।

जगन्नाथपुरी को श्रीक्षेत्र, पुरुषोत्तम क्षेत्र, शंख क्षेत्र, नीलाद्रि, नीलगिरि तीर्थ कहते हैं।

श्रीमंदिर की पाकशाला विश्व की सबसे बड़ी पाकशाला है

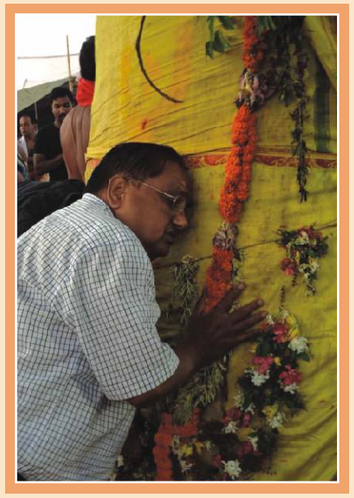

जगन्नाथपुरी को मर्त्य बैकुण्ठ, दशावतार क्षेत्र, कुशास्थली और जमनिका तीर्थ भी कहते हैं।

नवकलेवर 2015 : एक अवलोकन

जिस प्रकार मनुष्य अपने पुराने वस्त्रों का त्यागकर नये वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी प्रकार संसार के स्वामी, जगत के नाथ श्री श्री जगन्नाथजी जिस साल जोड़ा आषाढ़ पड़ता है, उस साल अपना नवकलेवर करते हैं अर्थात् नया शरीर धारण करते हैं, जिसे जगन्नाथ संस्कृति में नवकलेवर कहा जाता है और यह आयोजन विश्वस्तरीय होता है। श्रीमंदिर प्रशासन पुरी धाम से प्राप्त सूचनानुसार इस साल नवकलेवर रथयात्रा देखने के लिए पुरी धाम में कम से कम 50 लाख जगन्नाथ भक्त पुरी धाम पधारेंगे।

नवकलेवर से जुड़ी सभी पवित्र कार्यक्रमों की सूची :-

1. वनयात्रा - 29 मार्च, 2015

वनयात्रा में शामिल कुल लगभग 200 श्रीमंदिर के दइतापतिगण, ब्राह्मण, लेंका, देउलीकरण, तड़ाउकरण, विश्वकर्मा आदि पुरी के राजा के कर-कमलों से सुपारी आदि ग्रहणकर पुरी के श्रीजगन्नाथ वल्लभ मठ में रात्रि विश्राम किये।

2. 30 मार्च, 2015 को आधी रात के समय दइतापतियों एवं समस्त वनयात्री

श्रीमंदिर की पाकशाला में मात्र 45 मिनट में एक बार में दस हजार लोगों के लिए भोजन तैयार होता है।

दल कोणार्क के समीप स्थित काकटपुर माँ मंगला मंदिर के पास प्राची नदी तट निर्मित देउली मठ में ठहरे, जहाँ पर वे अपनी दिनचर्या जगन्नाथजी एवं समस्त देव विग्रहों के भजन, पूजन एवं संकीर्तन आदि में व्यतीत किये।

3. 1 अप्रैल, 2015 को वनयात्रा दल नरुआ श्री शंकरेश्वर मंदिर में विश्राम किये।
4. 2 अप्रैल, 2015 को पुन: देउली मठ आगमन किये।
5. 3 अप्रैल, 2015 को काकटपुर माँ मंगला की पूजा-अर्चना कर उनकी आज्ञानुसार पुन: देउलीमठ में रात्रि विश्राम किये।
6. 4 अप्रैल से लेकर 17 मई, 2015 तक चारों देव विग्रहों श्री सुदर्शनजी, देवी सुभद्रा माँ, भगवान बलभद्रजी और श्री जगन्नाथजी के नवकलेवर के लिए क्रमश: खोर्द्धा जिला और जगतसिंहपुर जिले में पैदल जा-जाकर पवित्र दारु अर्थात् नीम की लकड़ी का चयन किया। उनकी पूजा-अर्चना एवं यज्ञ आदि कर उसे काटकर बैलगाड़ी पर लादकर पुरी लाये।
7. 29 मई, 2015 को रुक्मिणी एकादशी मनाई गई।
8. 30 मई, 2015 को चंपक द्वादशी मनाई गई।
9. 1 जून, 2015 को चतुर्थी होम किया गया और सेनापटा अर्पण किया गया।
10. 2 जून को देवस्नानपूर्णिमा अनुष्ठित की गई।
11. 5 जून से लेकर 15 जून, 2015 तक श्रीदारुविग्रह निर्माण एवं यज्ञ आदि किया गया।
12. पुरी के गजपति महाराज श्री दिव्यसिंहदेवजी द्वारा 15 जून, 2015 को आयोजित यज्ञ की पूर्णाहूति दी गई और श्रीनृसिंह भगवान का बाहुड़ा विजय एवं मध्यरात्रि बेला में ब्रह्म अथवा घट परिवर्तन किया गया।
13. 11 जुलाई, 2015 को देव विग्रहों के लिए नव निर्मित रथों के चक्का पूजन आदि का कार्य संपन्न हुआ।
14. राजाप्रसाद विजय 13 जुलाई को अनुष्ठित हुई।
15. बनक लागि हुआ 15-16 जुलाई को।
16. नवयौवन दर्शन हुआ 17 जुलाई, 2015 को।

जगन्नाथजी के रथ का नाम नंदिघोष है।

17. महाप्रभु की विश्वप्रसिद्ध रथयात्रा निकाली गई 18 जुलाई, 2015 को।

नवकलेवर-2015 का विशेष आकर्षण-

जिस प्रकार अनन्य जगन्नाथभक्त अवन्ती नरेश ने सबसे पहले अपने ब्राह्मण विद्यापति को जगन्नाथजी/नीलमाधव की खोज के लिए पुरी भेजा, विद्यापति का यहाँ पर आगमन हुआ। यहाँ के जंगल में उनकी मुलाकात ललिता नामक अति सुन्दर कन्या से हुई, जिसका पिता बिश्वाबसु जगन्नाथजी को दारुब्रह्म के रूप में नील माधव के रूप में प्रतिदिन पूजता था, ठीक उसी प्रकार 2015 के नवकलेवर के दौरान भी दइतापतियों में से विद्यापति एवं विश्वाबसु बनाकर वनयज्ञ यात्रा की औपचारिकता निम्न रूपों में पूरी की गई-

1. 29 मार्च, 2015 को वनयज्ञ यात्रा में हिस्सा लेने वाले दइतापति सेवकों एवं पतिमहापात्रों के सिर पर साड़ी बाँधी गई। पुरी श्रीमंदिर के रत्नसिंहासन से चारों देव विग्रहों श्री सुदर्शनजी, देवी सुभद्रा माँ, बड़े भाई बलभद्रजी और श्री जगन्नाथजी की इस पवित्र कार्य हेतु आज्ञामाल लाकर इन्हें प्रदान किया गया।

पूर्ण दारुब्रह्म के नवकलेवर हेतु मिले खोर्द्धा और जगतसिंहपुर जिले में पवित्र दारु (नीम की पवित्र लकड़ियाँ)

प्रभु सुदर्शन का दारु मिला-	गड़कंटुनिया, खोर्द्धा जिला
माँ सुभद्रा देवी का दारु-	मजुराई, अड़ंगगढ़, जगतसिंहपुर
प्रभु बलभद्रजी का दारु-	माँ सारलापीठ, कनकपुर झंकड़, जगतसिंहपुर
महाप्रभु जगन्नाथजी का दारु-	हाथीसूड, खरीपड़िया, जगतसिंहपुर

बलभद्रजी के रथ का नाम तालधवज है।

नवकलेवर

(क) नवकलेवर की परम्परा

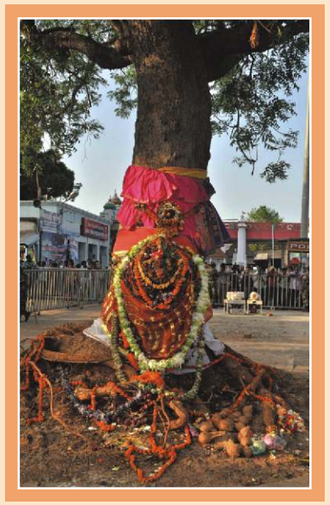

महाप्रभु जगन्नाथ जी का नवकलेवर शास्त्रीय परम्परा के अनुसार निर्धारित समय पर पुरी में संपन्न होता है। बारह वर्षों में (या इससे कम या अधिक अंतराल के बाद) जब दो आषाढ़ मास आते हैं, तब यह महोत्सव संपन्न होता है। शास्त्रीय विधान के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक प्रसंगों में भी महाप्रभु के नवकलेवर की अनेक घटनाएँ मिलती हैं।

अनेक बार श्रीक्षेत्र और महाप्रभु को बाहरी आक्रमण का सामना करना पड़ा था। ऐसे संकट की घड़ी में महाप्रभु को पुरुषोत्तम क्षेत्र छोड़ना पड़ा था। बाद में संकट टल जाने पर महाप्रभु की नवकलेवर के साथ श्रीक्षेत्र में पुन: प्रतिष्ठा की गई। एक बार विदेशी रक्तबाहु ने आक्रमण किया जिसके फलस्वरूप महाप्रभु के पलायन की घटना का वर्णन मिलता है।

मादला पांजि (पंचांग) के अनुसार ओडिशा में नरपति शोभन देव के शासनकाल के दूसरे वर्ष में रक्तबाहु के सेनापतित्व में यवनों ने पुरुषोत्तम क्षेत्र पर आक्रमण किया था। वे शोभन देव भौमकर वंश के शुभंकर देव प्रथम थे और उनका शासन काल आठवीं एवं नवीं शताब्दी का रहा था। रक्तबाहु थे राष्ट्रकूट राजा तृतीय गोविन्द। रक्तबाहु के नेतृत्व में पुरुषोत्तम क्षेत्र पर आक्रमण करनेवाले यवन 'मुरुण्ड' जाति के आक्रमणकारी थे। रखाल दास बनर्जी के मतानुसार वे कुशान थे। इस बारे में विचारों में भिन्नता के बावजूद कहा जा सकता है कि श्रीक्षेत्र-पुरी और श्रीजगन्नाथ मन्दिर किसी एक विदेशी आक्रमणकारी दल का

माता सुभद्राजी के रथ के नाम देवदलन है।

शिकार हुआ था। मादला पांजि में वर्णित तथ्य के अनुसार शोभन देव के काल में दिल्ली से रक्तबाहु के आक्रमण के दौरान महाप्रभु के सेवकों ने राजा की अनुमति से महाप्रभु की प्रतिमा को सुनुपुर गोपली में ले जाकर एक मंडप में विराजमान किया था। मुगलों के आक्रमण के समय सेवकों ने महाप्रभु को जमीन में गाड़कर उस पर एक वृक्ष लगा दिया था।

रक्तबाहु के श्रीक्षेत्र पर आक्रमण के पूर्व ही महाप्रभु के सेवक आनेवाली विपत्ति से अवगत हो गए थे। उस ऐतिहासिक घटना के प्रमाण स्वरूप सोनपुर से गोपाली ग्राम के बीच एक जगन्नाथ मंदिर अभी भी है। रक्तबाहु ने जगन्नाथ मंदिर को खाली देखा तो क्रोध से उन्मत्त होकर विध्वंशलीला प्रारंभ कर दी और श्रीक्षेत्र श्रीहीन हो गया। यह युग ओड़िशा का अन्धकार युग माना जाता है।

इसी प्रकार 146 वर्ष बाद केशरी वंश के संस्थापक ययाति केशरी के राज्यकाल में इस अन्धकारमय युग का अवसान हो गया। उन्होंने महाप्रभु का पुनरुद्धार कराकर श्रीमंदिर में पुनर्प्रतिष्ठित कराया। लेकिन इतने वर्षों तक जमीन में गड़े होने के कारण विग्रह जर्जर हो गए थे। इसलिए विधिपूर्वक नए दारू (काष्ठ) लाकर नई प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा की गई थी।

परवर्ती काल में केशरी, गंग और सूर्य वंशों के राज्यकाल में ओड़िया जाति के आराध्य देव श्रीजगन्नाथ शांति से पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहे। ओड़िशा के अंतिम स्वतंत्र राजा मुकुन्द देव गजपति के राज्यकाल तक अच्छे दिन रहे। 1568 में मुकुन्द देव की मृत्यु के बाद उनके दुर्बल उत्तराधिकारी के राज्यकाल में ओड़िशा में राजनैतिक अस्थिरता आ गई। ओड़िया जाति के घोर दुर्दिन आए। बंगाल के नवाब के सेनापति कालापहाड़ ने ओड़िशा पर आक्रमण किया और अनेक हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को नष्ट कर दिया। भुवनेश्वर में अपनी विध्वंशलीला के बाद कालापहाड़ पुरी की ओर बढ़ा। इस बार भी महाप्रभु के सेवकों ने तत्परता के साथ देव-प्रतिमाओं को चिल्का क्षेत्र के पारीकुद में गुप्त रूप से स्थापित किया। कालापहाड़ पुरी में विध्वंश मचाने के बाद जगन्नाथ की तलाश में यथास्थान पर पहुँच गया। मादला पांजी के अनुसार, ''चिल्का के मुहाने को पार कर समुद्र में कमर तक पानी में प्रवेश कर जगन्नाथ जी के विग्रह को

निकाला और हाथी पर लाद कर उसे ले गया। गंगा के किनारे ले जाकर उसने विग्रह को आग में डाल दिया। किंतु ऐसा करने से अचानक उसका शरीर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। तब काजी ने बताया कि ओड़िया जाति के देवता को आग में झोंकने का प्रयास करने के कारण कालापहाड़ का शरीर फट गया। यह सुनकर कालापहाड़ के बेटे ने जगन्नाथ विग्रह को और कुछ न कर तुरंत गंगा में प्रवाहित कर दिया। जगन्नाथ जी को जब कालापहाड़ ले जा रहा था, तो जगन्नाथ जी का भक्त विशर महांति उसके पीछे लग गया, उसने अनशन कर उससे विग्रह की मांग की। उसने जगन्नाथ जी के विग्रह से ब्रह्म को निकाल कर मृदंग में छिपा लिया और लाकर कुजंगगढ़ चला आया। कुजंग राजा ने नवकलेवर कराकर जगन्नाथ जी को पुनर्प्रतिष्ठित कराया।''

ओड़िशा में जब भोई वंश की स्थापना हुई। इस वंश के संस्थापक रमाई राउतरा उर्फ रामचन्द्र देव माने जाते हैं। ये ओड़िशा के स्वतंत्र गजपति के रूप में प्रतिष्ठित हुए। राजा ने जगन्नाथ जी को पुनर्प्रतिष्ठित किया। ''चकड़ा पोथी'' के अनुसार–रात में राजा को भगवान ने स्वप्न में निर्देश दिया कि वे कुजंगगढ़ में विराजमान हैं। उस शाखा की दारू से नई मूर्ति राजा गढ़े। बालि नृसिंह से उन्हें लाकर श्रीमन्दिर के रत्नसिंहासन पर विराजमान कराए।'' अगले दिन राजा ने सभासदों, पुजारियों, सामंतों और कारीगरों को बुलाकर स्वप्न की बात बताई। राजा ने बड़े पद्मनाभ पटनायक को आज्ञा दी। वे कुजंग से महाप्रभु को ले आए। राजा ने नए विग्रह का निर्माण किया। उनमें ब्रह्म को स्थापित किया।

मादला पांजि के अनुसार–नवें वर्ष में राजा ने कुजंग गढ़ से ब्रह्म मंगवाया। खुरुधा में वनयज्ञ किया और श्रीमूर्तियों का निर्माण किया। 11वें वर्ष में कर्क राशि के सर्यू के 18वें दिन श्रावण शुक्ल नवमी के दिन श्री पुरुषोत्तम को बड़े मन्दिर में रत्न सिंहासन पर विराजमान किया। ब्रह्म लानेवाले शवर महान्ति को नायक बनाया। सभी संन्यासी, ब्रह्मचारी, भट्टमिश्रों ने महाप्रसाद सेवन किया और श्री रामचन्द्र देव को द्वितीय इन्द्रद्युम्न की उपाधि दी। इसके साथ ही कुछ वर्षों से बन्द रथयात्रा का फिर से प्रचलन शुरू हुआ।

रामचन्द्र देव के बाद उनके पुत्र पुरुषोत्तम देव राजा बने। इस बीच मुगल

शासक अकबर की मृत्यु हो गई। अब एक बार फिर उत्कल पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। लुटेरे और धर्मान्ध मुगल सरदारों के आक्रमण से रक्षा के लिए श्रीजगन्नाथ जी को बार-बार श्रीक्षेत्र से निकाल कर राज्य के दुर्गम क्षेत्रों में स्थानान्तरित किया गया। राज्य की संपत्ति तथा मान सम्मान सबसे बढ़कर भगवान को मानकर ओड़िशा के राजा तथा यहाँ की प्रजा जगन्नाथ जी की रक्षा में लग गई।

पहली बार 1609 में जब कटक के सुबेदार मकरम खाँ ने पुरी पर आक्रमण किया, तब श्री जगन्नाथ जी को पुरी से आठ किलोमीटर दूर कपिलेश्वर पुर में श्रीजगन्नाथ जी को छुपाकर रखा गया। यहीं पर भगवान की डोलयात्रा और बाहुड़ा यात्रा संपन्न हुई। 1610 में केशुदास नामक और एक मुगल सुबेदार ने रथयात्रा के वक्त पुरी पर फिर से आक्रमण कर दिया। आक्रमणकारियों ने देवताओं के तीनों रथों को जला दिया। मादला पांजि के अनुसार परमेश्वर को पालकियों में कन्धो पर उठाकर श्री मन्दिर में विराजमान करवाना पड़ा। 1615 में राजा टोडरमल के पुत्र कल्याण मल जब ओड़िशा के सूबेदार बने तब उन्होंने खोरधा पर आक्रमण किया था। इस समय सेवकों ने श्रीमन्दिर पर आक्रमण की आशंका से श्री जगन्नाथ जी को चिल्का के किनारे महीसानासी पर्वत पर रखा। 1617 में मकरम खाँ ने खोरधा पर कब्जा कर पुरी पर आक्रमण किया। इस विपत्ति के वक्त श्रीजगन्नाथ जी को बाणपुर की सीमा पर गजपदा में लेकर नदी में नाव पर विराजमान किया गया। दो वर्ष बाद मकरम खाँ के वापस जाने पर श्रीजगन्नाथ को लेकर फिर से पुरी में प्रतिष्ठित किया गया। 1622 में भोई वंश के श्री नरसिंह देव के राज्यकाल में सूबेदार अहमद बेग ने खोरधा पर आक्रमण किया। इस समय राजा नरसिंहदेव ने अपने परिवार और श्री जगन्नाथ जी को रणपुर के माणित्री दुर्ग में स्थानांतरित कर दिया। इसके बाद तत्कालीन सम्राट के पुत्र विद्रोही खुर्रम के हिन्दू सेनापति भीम सिंह ने जगन्नाथ जी के उद्धार के लिए नरसिंह देव की सहायता की। फिर खुर्रम के बंगाल से भागकर ओड़िशा में शरण लेने पर श्रीजगन्नाथ पर फिर विपत्ति आ गई। उससे रक्षा के लिए राजा नरसिंह देव ने साक्षीगोपाल मन्दिर में श्रीजगन्नाथ को रखा। खुर्रम के ओड़िशा से विदा लेने के बाद मुगलों की काली साया टली। श्रीक्षेत्र से जगन्नाथ के प्रस्थान और प्रत्यावर्त्तन के प्रत्येक अवसर पर अन्न महाप्रसाद का पुनः प्रवर्त्तन

पंचसखा- जगन्नाथदास, बलरामदास, अच्युतानन्द दास, यशोवंतदास और अनन्तदास।

हुआ था। इसके साथ ही श्रीविग्रहों का दारू-परिवर्तन और नवकलेवर विधि का पालन किया गया।

दिल्ली के सम्राट औरंगजेब के काल में उपर्युक्त विपत्ति चरम सीमा पर थी। 1693 में दिव्यसिंह देव खोरधा के राजा थे। 1698 में नायब नवाब एकराम खाँ ने श्रीजगन्नाथ मन्दिर पर आक्रमण किया। इतिहासकार कृपासिन्धु मिश्र के मतानुसार पण्डों ने श्री जगन्नाथ के विग्रहों से दारू ब्रह्म को निकाल कर विमला मन्दिर के पिछवाड़े कहीं छुपा दिया। एकराम खाँ ने श्रीजगन्नाथ के विग्रहों को नष्ट कर दिया और मन्दिर की काफी लूटपाट की। इधर दिव्यसिंहदेव एकराम खाँ के भय से छुप गए।

मुगलों का सामना करना ओड़िशा के राजपरिवार के लिए आसान नहीं था। इसलिए राजा ने इस राष्ट्रीय अपमान को सह लिया, किंतु अपने कौशल से श्रीजगन्नाथजी और श्रीमन्दिर को ध्वंस से बचा लिया। मादला पांजि के अनुसार इन दिनों भोग के वक्त घण्टी आदि नहीं बजती थी, रथयात्रा की परम्परा भोगमण्डप के अन्दर ही निभाई जाती थी। औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिव्यसिंहदेव ने अठरगढ़ के राजाओं को एकत्र कर ओड़िशा से मुगल सेना को भगा दिया। श्रीजगन्नाथ और श्रीक्षेत्र के पुनरुद्धार की व्यवस्था की।

1731 में फिर श्रीजगन्नाथ पर विदेशी आक्रमण हुआ। उस समय गजपति द्वितीय रामचन्द्र खोरधा के राजा थे। इनके शासनकाल में ओड़िशा की आन्तरिक-कलह का मौका पाकर मुगल सूबेदार तकि खाँ ने खोरधा पर आक्रमण किया। राजा रामचंद्र नजरबन्द कर लिए गए। इस नाजुक समय में श्रीमन्दिर पर मुगलों के उपद्रव की आशंका छाई रही। इसलिए उनको गुप्त रूप से बाणपुर की नदी के हरीश्वर मंडप में लाया गया। पुरी से जगन्नाथ जी के प्रस्थान की सूचना पाकर तकि खाँ ने 1733 में फिर खोरधा पर आक्रमण कर दिया। इस बार राजा ने श्रीजगन्नाथ को बाणपुर से हटाकर खलिकोट की सीमा पर टिकालि में रखा। उन्होंने स्वयं बोलगढ़ में जाकर शरण ली। तकि खाँ रामचन्द्र के पुत्र भागीरथ कुमार को खोरधा की गद्दी पर बैठकर मुर्शिदाबाद लौट गया। इसी बीच रामचन्द्र देव ने पुनः खोरधा पर अधिकार कर श्रीजगन्नाथ जी को वापस लाकर पुरी में पुनर्प्रतिष्ठित किया। इस वर्ष दो आषाढ़ मास पड़े थे।

कुल 4 प्रकार के प्राणी हैं- जरायु, अण्डज, स्वेदन और उद्भिज्ज।

इसलिए श्रीजगन्नाथ जी का नवकलेवर संपन्न हुआ।

श्रीजगन्नाथ की रथयात्रा का समाचार सुनकर कटक के मुगल सूबेदार दशरथ खाँ ने क्रोधित होकर फिर खोरधा पर आक्रमण कर दिया। इस बार रामचन्द्र देव ने तीनों श्रीविग्रहों को आठगढ़ के मेरेदा ग्राम में स्थानांतरित कर दिया। वहाँ के लोगों ने दो महीने तक अथक परिश्रम करके वहाँ श्रीजगन्नाथ का एक मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर में आज भी प्रमाणस्वरूप तीनों विग्रहों की पूजा होती है।

रामचन्द्र देव के बाद उनके पोते श्री वीरकिशोर देव खोरधा के राजा बने। इनके राज्यकाल में ओड़िशा मराठों के अधीन था। वीरकिशोर देव मराठों से सहायता प्राप्त कर मराठा शासकों का प्रियपात्र बन गए। इस बदली परिस्थति में राज्यसेवक वीरकिशोर देव और धर्मनिष्ठ हिन्दू मराठा शासकों के समय में श्रीमन्दिर की स्थिति शान्तिपूर्ण रही। इसके साथ ही लगभग 200 वर्षों की मुगल यातनाएँ समाप्त हो गईं।

जब-जब ओड़िशा में अन्तर्विवाद हुआ, उन दुर्दिनों में इस जाति के हृदयपिंड स्वरूप श्रीजगन्नाथ दारूब्रह्म बाहरी शत्रुओं के आक्रमण के शिकार हुए। ओड़िया जाति की शान्ति और सुरक्षा खतरे में पड़ने के साथ इष्टदेव तथा राष्ट्रीय देवता श्रीजगन्नाथ का अस्तित्व भी खतरे में पड़ा। युगों से श्रीजगन्नाथ इस जाति की आत्मा स्वरूप रहे, इस जाति के उत्थान-पतन से प्रभावित रहे।

इस प्रकार महाप्रभु के नव-कलेवर की परम्परा अपने उत्थान-पतन के पथरीले रास्ते को पार करती हुई अपनी पतितपावनी भक्ति की मन्दाकिनी में आ मिली है।

पंचदेव- विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और दुर्गा।

(ख) नवकलेवर : एक विवेचन

श्रीजगन्नाथ जी का नवकलेवर पुण्यभूमि भारत की सांस्कृतिक आस्था का प्रमाण है। विग्रहों का नया शरीर धारण करना, आत्मा और शरीर के संबंध और पुनर्जन्म के प्रतीक हैं।

प्राचीन काल में जब पुराण वर्णित दारू समुद्र में बहते हुए आया था और विचित्र बढ़ई ने इससे विग्रह निर्माण के लिए प्रयास शुरू किया था, उस वक्त भी दो आषाढ़ के महीने पड़े थे। उसके बाद से ही नवकलेवर की परम्परा शुरू हुई थी।

देव-विग्रहों का नवकलेवर शास्त्रीय विधि-विधान से होता है। ओड़िशा का इतिहास इसका साक्षी है कि विदेशियों और विधर्मियों के आक्रमण से बचाने के लिए उत्कलवासियों ने अनेक बार श्रीजगन्नाथ जी के विग्रहों को श्रीमन्दिर के रत्नसिंहासन से हटाकर अन्यत्र सुरक्षित रखा।

सामान्यत: जिस वर्ष दो आषाढ़ मास पड़ते हैं। उसी वर्ष श्रीजगन्नाथ जी का नवकलेवर होता है। जोड़ा आषाढ़ साधारणत: 8 वर्ष में, 11 वर्ष में या 19 वर्ष में

4 आश्रम- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ, संन्यास।

आता है। नवकलेवर के लिए वनयज्ञ होता है। चैत्र महीने के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को मध्याह्न में भगवान जगन्नाथ जी की विशेष पूजा के बाद इसका आरम्भ होता है। तीन फूल मालाएँ जगन्नाथ, सुभद्रा एवं बलभद्र को अर्पण करके सेवक इन मालाओं को दइतापति को सौंपते हैं। आज्ञामाल लेकर, जगन्नाथ जी का लाल पाटवस्त्र पहनकर और सिर में बाँधकर दइतापति श्रीमन्दिर से निकलते हैं। अनेक प्रकार के वाद्यों की ध्वनि से चारों दिशाएँ प्रकम्पित हो उठती हैं। दइतापतियों के गजपति महाराज के महल तक पहुँचते ही राजगुरु द्वारा दी गई सुपारी मुख्य दइता के हाथ में सौंप देते हैं। सुपारी लेकर दइतापति श्रीजगन्नाथवल्लभ मठ में विश्राम करते हैं। विश्राम के बाद वे काकटपुर जाते हैं। वनयज्ञ यात्रा में भाग लेने वालों में दइतापति, सुई, महापात्र, परिमहापात्र, लेंका, मन्दिर पुलिस, ब्राह्मण, करण और मन्दिर-करण होते हैं। काकटपुर जाकर यात्री देउलिमण्डप में पहुँचते हैं। वहाँ काकटपुर की देवी मंगला के सेवक शोभायात्रा में आकर उनका स्वागत करते हैं। दइतापति महाप्रभु की आज्ञामाल और सुदर्शन को लेकर मंगला के पास रखते हैं।

श्रीक्षेत्र से लाए गए भोग और पूजन सामग्री दइतापति मंगला देवी को अर्पण करते हैं। इसके पहले जगन्नाथ जी का लाल नेत मंगला के मन्दिर पर बाँधा जाता है। इसके बाद माँ को वे चोआ, चन्दन, अगरू मिश्रित 108 कलश जल से स्नान कराकर माजणा कराते हैं। इसके बाद माँ को नई साड़ी, गहने और फूलमालाएँ पहनाई जाती हैं। भोग लगाए जाने के बाद वे माँ के पास अधिया पढ़ते हैं। सामान्यत: अधिया पढ़ने के दूसरे दिन स्वप्न में पहले सुदर्शन के दारू के प्राप्ति स्थान के बारे में निर्देश मिलता है। फिर क्रमश: बलभद्र, सुभद्रा एवं जगन्नाथ के दारू का निर्देश मिलता है।

नवकलेवर के लिए जिस वृक्ष को चुना जाता है, उसमें निम्न लक्षण होने चाहिए–

वृक्ष नीम का होना चाहिए। वृक्ष की लम्बाई 7 फुट से 10 फुट के बीच होनी चाहिए। उसमें तीन प्रधान शाखाएँ होनी चाहिए। उस वृक्ष के निकट मन्दिर, मठ, नदी, तालाब, श्मशान, दीमक की मांद, बेल का पेड़, वरुण का पेड़, साहाड़ा का

5 प्रकार के महायज्ञ- ब्रह्म, पितृ, भूत, मानव, यज्ञ।

पेड़, तुलसी का पौधा और गड्ढा होना चाहिए। उस दीमक-मांद में साँप उस वृक्ष के रखवाले के रूप में रहना चाहिए। उस वृक्ष की कोई डाल कटी नहीं होनी चाहिए। उस वृक्ष पर किसी पक्षी द्वारा कोई घोंसला नहीं बना होना चाहिए। वृक्ष के तने की मोटाई 2 मीटर से 3 मीटर के बीच होनी चाहिए। वृक्ष पर शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिह्न मिलने चाहिए।

दारू चयन के बाद शबर पल्ली का आयोजन होता है। यथाविधि वनयज्ञ होता है। दारू को पहले से रस्सी से बाँध दिया जाता है। वृक्ष को आज्ञामाल अर्पित की जाती है। इस उपलक्ष्य में विधिवत यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड, अंकुर-रोपण गृह निर्मित होकर वनयज्ञ होम आरम्भ होता है। इसमें 5 वेदज्ञ ब्राह्मण हिस्सा लेते हैं। इसके बाद वृक्ष काटा जाता है। वृक्ष कटकर भूमि पर गिरने तक सभी उपवास रहते हैं। वनयज्ञ में पाताल नृसिंह के मंत्र से पूजा होती है। वनयज्ञ के मुख्य रूप से आचार्य, ब्रह्मा और पुस्तकाचार्य हिस्सा लेते हैं।

श्री मन्दिर में दारू को लाकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन विशेष यज्ञकर्म होते हैं। नए दारू को स्नान और प्राणन्यास कराया जाता है। श्रीसूक्त और पुरुषसूक्त से वेदवेद्य जगन्नाथ बोधन होता है। गजपति महाराज यज्ञ में पूर्णाहुति देते हैं। दान, आरती, पुष्पांजलि विधिवत अनुष्ठित होते हैं। इस प्रकार यज्ञ और प्रतिष्ठा कर्म के बाद मन्दिर को परिशुद्ध किया जाता है। इसके पहले सांध्य आरती और बड़सिंहार धूप होता है। मन्दिर के बाहरी द्वार पर बाईस पावच्छ सीढ़ियों पर एकमात्र श्रीजगन्नाथ के पाटखण्डा हाथ में लेकर मन्दिर के करण (कायस्थ) पहरा देते हैं। इस समय समग्र मन्दिर अन्धकार में डूबा होता है। नए विग्रह पहण्डि (पैदल-नृत्य-कीर्तन-सहित यात्रा) में निर्माण मण्डप से आकर अणसर पिण्डि पर

4 प्रकार के माधुर्य हैं- रूप, वेणु, प्रेम, लीला माधुर्य।

विराजमान होते हैं। रात्रि में शुभ मुहूर्त में पुरातन विग्रहों से ब्रह्म को निकाल कर नए विग्रहों में स्थापित किया जाता है। दारू के नाभिकमल में यह ब्रह्म होने के कारण इनका दारूब्रह्म नाम सार्थक होता है। इसके बाद नए विग्रहों को रंग-रोगन आदि से अलंकृत किया जाता है।

पुराने विग्रहों को श्रीमन्दिर के कोइलि बैकुण्ठ स्थित श्मशान में शिआहि लता के नीचे समाधि दे दी जाती है। कहते हैं कि विग्रह गोलोक विश्राम लेते हैं। पुरानी प्रतिमाओं के साथ रथ के सारथी, घोड़े, पार्श्वदेवता, तोता, द्वारपाल, धवजादण्ड और तख्त एवं शय्या आदि भी गोलोक विश्राम अर्थात् समाधि ले लेते हैं। यह समाधि पर्व भगवान जगन्नाथ के श्रीकृष्णावतार की स्मृति दिलाता है। पुराण वर्णित तथ्य अनुसार श्रीकृष्ण का अदग्ध पिण्ड दारूब्रह्म के रूप में समुद्र में बहते हुए नीलसिन्धु के किनारे आकर लगा था। इसी दारू से सर्वप्रथम जगन्नाथ जी के विग्रहों का निर्माण हुआ था। जारा शवर के तीर से घायल होकर श्रीकृष्ण ने प्राण त्यागे थे।

श्रीजगन्नाथ काष्ठ (दारू) निर्मित विग्रह हैं। 'वृहत्संहिता' में वराहमिहिर ने कहा है कि काष्ठ निर्मित मूर्ति की उपासना करने से श्री, बल, वीर्य, विजय और आयु मिलती है। फिर 'वामदेव संहिता' के अनुसार विभिन्न वृक्षों में नीम का पेड़ वास्तविक दारू बनने के लिए उपयुक्त होता है। 'प्रतिमा-लक्षण सौधागम' में भी इसका समर्थन किया गया है।

पुराना नीम का वृक्ष मलय पवन के स्पर्श से चन्दन में बदल जाता है। इस बात को कवियों ने अपने काव्य में वर्णित किया है और फिर नीम का पेड़ खारा होने के कारण जल्दी नष्ट नहीं होता और इसमें कीड़े आदि भी नहीं लगते। नीम का पेड़ सभी वर्णों के व्यक्तियों द्वारा पूज्य होता है। महाप्रभु जाति, धर्म, वर्ण के निरपेक्ष सभी के देव हैं और फिर जिन दारू से श्रीजगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शन की मूर्तियाँ निर्मित होती है, उनका वर्ण क्रमशः काला, श्वेत, पीला और लाल होना चाहिए। दूसरा लक्षण है कि इन सभी दारू का स्वाद तिक्त होने के बदले सामान्य मधुर होना और एक विशेष लक्षण है।

सर्वोपरि नवकलेवर यात्रा शवर-संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक थी। युगों से

जगन्नाथजी बद्रीनाथ में स्नान करते हैं।

श्रीजगन्नाथ शबर देवता के रूप में पूजित होते आ रहे थे। इसलिए विश्वावसु के वंशधर दइतापतिगण ही दारू लाने का संपूर्ण कार्य अत्यन्त निष्ठा और पवित्रता से करते हैं और फिर ये विधि-विधान सामाजिक संस्कार और परम्परा से अलग नहीं है। इसलिए नवकलेवर सभी के मन को छूने में समर्थ है।

ऋतुचक्र में आषाढ़ मास का विशेष महत्व होता है। ग्रीष्मकाल के बाद वर्षा के आगमन से वृक्ष-लता नवपल्लवित हो उठते हैं। कृषक तथा प्रत्येक मानव के लिए आषाढ़ का पहला दिन महत्वपूर्ण होता है। चारों ओर छाई हरियाली श्री जगन्नाथ की रथयात्रा के महोत्सव की महिमा को और महान् बनाती है। पुनर्जन्म और आत्मा की अमरता का संदेश श्रीजगन्नाथ की इस परम्परा में समाहित है।

ब्रह्म-दारु से निर्मित दारूब्रह्म का विग्रह परिवर्तन में अपरिवर्तनीय ब्रह्म की तरह नवकलेवर और रथयात्रा ये दोनों बिन्दु होकर हिन्दू कर्म और भक्ति के सिन्धु की अंतरंग तरंग में सम्मिलित होकर जीवन के कष्टों को भूल जाता है। युग की यंत्रणा से विकल होने पर भी नई उद्दीपना में नवकलेवर धारण करके मानव अपने यात्रापथ में आगे बढ़ता है। मानव जीवन नित्य नूतन, यात्रा पवित्र और सुन्दर हो।

जगन्नाथजी द्वारका में श्रृंगार करते हैं।

(ग) नवकलेवर: विधि-विधान

जगत के नाथ जगन्नाथ का नवकलेवर का विधि-विधान अत्यन्त सुन्दर, विस्तृत एवं रोचक है। चूँकि मूर्तिशास्त्र के नियमों के अनुसार विभिन्न पदार्थों से निर्मित मूर्तियों की आयु विभिन्न होती है। मणि, धातु, लकड़ी, चित्र, मिट्टी से निर्मित मूर्तियों की आयु क्रमशः दस हजार वर्ष, एक हजार वर्ष, बारह वर्ष, एक वर्ष और एक माह आंकी गई है। जगन्नाथ जी के विग्रह काष्ठ (दारू) से निर्मित होने के कारण इनकी आयु बारह वर्ष आंकी गई है। बारह वर्ष बाद नई मूर्तियों का निर्माण और प्राणप्रतिष्ठा होती है, जिसे नवकलेवर कहते हैं।

जगन्नाथ जी की मूर्तियों के दारू से निर्मित होने के पक्ष में अनेक तथ्य दिए जा सकते हैं। काष्ठ मूर्तियों का पूजन विशेष फल प्राप्ति कराता है और फिर जब आदिम मानव को धातुओं का ज्ञान नहीं हुआ था, तब वृक्ष ही उसके जीवनरक्षक थे और वृक्षों की पूजा करने लगा था। शवर सभ्यता में वृक्ष या दारूदेवता की पूजा विशेष रूप से प्रचलित थी। 'वृहद् संहिता' के अनुसार काष्ठ प्रतिमा आयु, श्री, बल, विजय प्रदान कराती है, मणि की प्रतिमा जनहित, सोने की प्रतिमा पुष्टि,

चांदी की प्रतिमा यश, ताम्बे की प्रतिमा सन्तान, पत्थर की प्रतिमा या शिवलिंग भूमि लाभ पहुँचाती है।

लेकिन सर्वोपरि तर्क यह है कि सर्वप्रथम इन्द्रद्युम्न ने स्वप्नादेश के अनुसार समुद्र में बहकर आए दारू से जगन्नाथ जी की मूर्तियों का निर्माण कराया था, तब से दारूदेवता की परम्परा चली आ रही है।

यह दारू नीम का ही क्यों होता है? इस प्रश्न के उत्तर में कई विज्ञानसम्मत तर्क दिए जाते हैं कि नीम के पेड़ में जल्दी कीड़े नहीं लगते। टिकाऊ लकड़ी होती है। शास्त्रों में नीम के काष्ठ को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है- **निम्ब प्रधानमेतेषां प्रतिमानां विनिर्मितौ।**

कहा जाता है कि पुराना नीम का पेड़ मलय पवन के लगने से चन्दन में बदल जाता है। यह विभिन्न रोगों के निवारण में औषधि रूप में ही नहीं, बल्कि विभिन्न तांत्रिक प्रयोगों में भी प्रयोग किया जाता है। शास्त्रमतानुसार नीम के रस में नपुंसकता या गर्भरोधक तत्व भी होते हैं। नीम के पेड़ को पुरुष, स्त्री और नपुंसक तीन भागों में बाँटा गया है। वामदेव संहिता में इसे समस्त वर्षों का पूज्य माना गया है-

निम्बाद्याः सर्ववर्णानां, वृक्षाः साधारणाः स्मृताः।

जगन्नाथ जी जाति के निरपेक्ष रूप से सभी जातियों द्वारा पूजित होते हैं। यहाँ कोई छूआछूत की भावना नही है।

ज्योतिष के अनुसार चन्द्रमान महीनों और सौरमान महीनों के मध्य समन्वय करने के लिए हर 32 महीनों के बाद एक अधिक मास की व्यवस्था की गई है। इस अधिक मास को मल महीना, पुरुषोत्तम महीना भी कहते हैं और इसे अन्य महीनों की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है। जोड़ा आषाढ़ साधारणतः 8 वर्ष में, 11 वर्ष में या 19 वर्ष में आता है।

नवकलेवर के लिए जो स्वतंत्र उत्सव (यात्रा) पालित होता है, उसको वनयाग (वनयज्ञ) कहा जाता है। चैत्र महीने के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को मध्याह्न की धूप पूजन के बाद शुभ मुहूर्त में भगवान जगन्नाथ जी की विशेष पूजा के बाद इसका आरम्भ होता है। पति महापात्र सिंहासन पर जाकर चारों देवताओं (सुदर्शन, बलभद्र, सुभद्रा और जगन्नाथ) जी चार आज्ञामाल (फूल मालाएँ) लाते हैं। स्वयं

सुदर्शन की आज्ञामान अपने साथ रखते हैं और अन्य दीन आज्ञामाल तीन दइतापतियों को सौंपते हैं। ये चारों आज्ञामाला लेकर अणसर पिण्डि (चबूतरे) पर पहुँचते हैं। जहाँ भितरछू महापात्र इनके तथा अन्य दइतापतियों के मस्तक पर साड़ी (पाटवस्त्र) बाँधते हैं। इस वक्त ब्राह्मण कोइलि बैकुण्ठ में यज्ञशाला, निर्माण मण्डप और दारूग्रह आदि की आधारशिला रखते हैं। इसके बाद दइतापति श्रीमन्दिर से निकलते हैं। अनेक प्रकार वाद्यों की ध्वनि से चारों दिशाएँ प्रकम्पित हो उठती हैं। फिर दइतापति गजपति महाराजा के महल तक पहुँचते हैं। वहाँ गजपति महाराजा राजगुरु को सुपारी अर्पण करते हैं और राजगुरु विश्वावसु एवं अन्य आचार्यों को सुपारी देकर श्रीविग्रहों की तलाश एवं निर्माण विधि का प्रारंभ करने के लिए गजपति की ओर से अनुरोध करते हैं। सुपारी लेकर दइतापति श्रीजगन्नाथवल्लभ मठ में जाकर विश्राम करते हैं। इनके आगे लेंका दक्षिण गृह के चक्र को लेकर चलता है। वहाँ डेढ़ दिन विश्राम के बाद वे काकटपुर की ओर पदयात्रा करते हैं।

काकटपुर की यात्रा के मध्य ये विभिन्न स्थानों पर विश्राम करते हैं। ब्राह्मण विद्यालयों या मठों में रहते हैं। किंतु दइतापति को दूसरों के छप्पर के नीचे रहना वर्जित होने के कारण वे पेड़ों के नीचे रहते हैं एवं वहीं भोजन पकाकर खाते हैं। दारू लेकर पुरी के श्रीमन्दिर के कोइलि बैकुण्ठ तक पहुँचाने तक की यात्रा भर ये सात्विक आहार कर व्रत करते हैं। वनयाग यात्रा में भाग लेने वालों में दइतापति, सुई, महापात्र, परिमहापात्र, लेंका, मन्दिर, पुलिस, ब्राह्मण, करण और मन्दिर-करण होते हैं।

दारू अन्वेषी दल काकटपुर जाकर यात्री देउल मठ में पहुँचते हैं। इस मठ के कुछ दूर कलकल निनादिनी पवित्र नदी प्राची बहती है। यहाँ खोजी दल के रहने का कारण यह है कि पहले यहाँ काकटपुर की मंगला देवी अवस्थान करती थीं। कालक्रम में अब मंगला देवी यहाँ से दो मील दूर निर्मित मंदिर में अवस्थान कर रही हैं। दूसरे दिन प्रातः जब ये प्राची नदी में स्नान कर नित्यकर्म पूरे करते हैं, काकटपुर की देवी मंगला के सेवक एक विशाल जुलूस शोभायात्रा में आकर उनका स्वागत करते हैं और मंगला मन्दिर तक ले जाते हैं। दइतापति महाप्रभु की

सैलानियों हेतु ओडिशा का स्वर्ण त्रिक्षेत्र- पुरी, कोणार्क और भुवनेश्वर।

आज्ञामाल और सुदर्शन को लेकर मंगला के आस्थान के पास रखते हैं।

श्रीक्षेत्र से लाया गया भोग और पूजन सामग्री दइतापति मंगला देवी को अर्पण कराते हैं। इसके पहले जगन्नाथ जी की लाल पताका मंगला के मन्दिर बाँधी जा चुकी होती है। मंगला को वे चुआ, चन्दन, अगर मिश्रित 108 कलश जल से स्नान कराकर मार्जना कराते हैं। इसके बाद माँ को नई साड़ी, गहने और फूलमालाएँ पहनाई जाती हैं। ब्राह्मण लोग चण्डीमाठ करते हैं। भोग लगाए जाने के बाद वे माँ के पास धरना देते हैं। सोने के पूर्व ये शास्त्रार्थ और स्वप्नावती मंत्र का जप करते हैं। इस मंत्र से संतुष्ट होकर मंगला सामान्यतः धरना पड़ने के दूसरे दिन स्वप्न में दर्शन देकर निर्देश देती है। पहले सुदर्शन की दारू के प्राप्ति स्थान के बारे में निर्देश मिलता है फिर क्रमशः अन्य बलभद्र, सुभद्रा एवं जगन्नाथ की दारू के संधान का निर्देश मिलता है। मंगला देवी की आज्ञा मिलने पर बड़े दइतापति के तत्वाधान में विभिन्न स्थानों पर जाकर दारू का पता लगाते हैं।

नवकलेवर के लिए जो वृक्ष काटा तथा उपयोग में लाया जाता है, उसमें निम्न लक्षण होने चाहिएं-

1. वृक्ष नीम का होना चाहिए।
2. वृक्ष के काण्ड की लम्बाई 7 फुट से 10 फुट के मध्य होनी चाहिए, वह सीधा और ठोस होना चाहिए।
3. उसमें तीन से सात शाखाएँ तक होनी चाहिए।
4. उस वृक्ष के निकट मन्दिर, मठ, नदी, तालाब, शमशान, दीमक की बाँबी, बेल का पेड़, वरुण का पेड़, साहाड़ा का पेड़, तुलसी का पौधा और गड्ढा होना चाहिए।
5. उस दीमक की बाँबी या गड्ढे में साँप उस वृक्ष के रखवाले के रूप में रहना चाहिए।
6. उस वृक्ष की कोई डाल कटी हुई नहीं होनी चाहिए। किसी प्रकार के कीड़े या जीव-जंतु द्वारा क्षत-विक्षत नहीं होना चाहिए और बिजली गिरने के कारण कहीं से क्षतिग्रस्त नहीं होना चाहिए।
7. उस वृक्ष पर किसी पक्षी द्वारा कोई घोंसला नहीं बनाया हुआ होना चाहिए।

कुल 18 पुराण हैं जिनमें स्कन्द पुराण में उत्कल महिमा और जगन्नाथजी की विस्तृत चर्चा है।

8. वृक्ष के तने की मोटाई 2 मीटर से 3 मीटर के मध्य होनी चाहिए।
9. वृक्ष पर शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिह्न मिलने चाहिएं।
10. जगन्नाथ की दारू का रंग काला, बलभद्र की दारू का रंग श्वेत, सुभद्रा की दारू का रंग पीला और सुदर्शन की दारू का रंग लाल होना चाहिए।
11. दारू का स्वाद खारा होने के बजाए थोड़ा मधुर होना चाहिए।

दारूवृक्ष का पता लगने के बाद वहाँ सबसे पहले विश्वकर्मा जाकर इसका नाप करते हैं और अंतिम निर्णय देते हैं। सबसे पहले सुदर्शन के दारू (वृक्ष) के पास सभी जाते हैं और वनयाग से लेकर दारू छेदन तक विभिन्न कर्म संपन्न होते हैं। फिर क्रमशः बलभद्र, सुभद्रा एवं श्री जगन्नाथ जी के दारूवृक्ष के साथ उपरोक्त रीति-नीतियाँ एक-एक कर संपन्न होती हैं।

सर्वप्रथम सुदर्शन के वृक्ष के पास लेंका चक्र लेकर पहुँचते हैं। चारों ओर सफाई के बाद यहाँ वनयज्ञ के लिए यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड, अंकुरारोपण, गृह और दइतापतियों के लिए शबरपल्ली बनाई जाती है। शबर सभ्यता के अनुसार शबरों के घर की छत तालपत्र की बनाई जाती है। ब्राह्मण निकटस्थ मन्दिर, मठ या विद्यालयों में आश्रय लेते हैं।

यथाविधि वनयाग में पहले विष्णु पूजा एवं हवन होता है। यह मंत्रराज के मंत्र से होता है। इस समय दइतापति वृक्ष की मार्जना कर श्वेत वस्त्र पहनाते हैं। ब्राह्मण पंचशस्य लेकर अंकुर-रोपण करते हैं। पुस्तकाचार्य विभिन्न शाला कर्म करते हैं। वनयाग में मुख्य अंशग्रहण करते हैं। एक आचार्य, एक ब्रह्मा, एक चरु, एक समिध और पुस्तकाचार्य। पुस्तकाचार्य अन्य सभी को विभिन्न विधियों का निर्देश देते हैं। इन पाँचों के अलावा अन्य चार ब्राह्मण चारों वेदोक्त

कोणार्क सूर्यमंदिर का निर्माण 1250 में सूर्यवंशी नरेश लांगुला नरसिंहदेव ने किया था।

हवन करते हैं। यज्ञशाला में पुस्तकाचार्य मण्डल पूजा करते हैं। एक कोने में अस्त्रपूजा की जाती है। दारू वृक्ष को पहले से रस्सी से बाँध दिया जाता है। वृक्ष को आज्ञामाल अर्पित की जाती है। वनयाग हवन में 5 वेदज्ञ ब्राह्मण अंशग्रहण करते हैं। पूजन से लेकर वृक्ष कटकर भूमि पर गिरने तक सभी उपवास करते हैं। इस शाला के मध्य में पतिमहापात्र और बाड़ग्राही दइता द्वारा पाताल नृसिंह के मंत्र से पूजा तथा आहुति दी जाती है। विभिन्न कर्मों में वैष्णवाग्नि संस्कार, वृक्ष पूजा, चारों द्वारों पर वेद हवन, अस्त्र पूजा, इन्द्रादि दश दिग्पालों के बलिदान आदि शामिल हैं। डेढ़ दिन तक हवन होता है। पहले दिन सभी कर्म समाप्ति के बाद सभी स्वप्नाणवक मंत्र जप करके सोते हैं।

दूसरे दिन सवेरे शाला प्रवेश के बाद आचार्य द्वारा शाला पूजन के बाद सूर्यार्ध्य हवन, इन्द्रादि दश दिग्पालों के हवन, नृसिंह पूजा, अस्त्र पूजा, वृक्ष के मूल में अस्त्र पूजा आदि होती है। अंक में इस वृक्ष के मूल में कूष्माण्ड बलि दी जाती है और अगले दिन यज्ञ में पूर्णाहुति देकर यज्ञकर्म समाप्त होता है। इसके बाद आचार्य अस्त्र पूजा के बाद सोने की कुल्हाड़ी विद्यापति को, चाँदी की विश्वावसु को और लोहे की विश्वकर्मा को देते हैं। वे इससे वृक्ष पर पहला आघात लगाते हैं और फिर अन्य विश्वकर्माओं द्वारा वृक्ष को मूल से काटा जाता है। वृक्ष नीचे गिरने के बाद पणा और चिवड़ा-चूर्ण का भोग लगाया जाता है। इसके बाद ब्राह्मण और दइतापति उपवास समाप्त कर हविष अन्न ग्रहण करते हैं।

दारू वृक्ष को अन्य वृक्षों की तरह टुकड़े-टुकड़े में पहले डालें काटकर बाद में मुख्य तना नहीं काटा जाता, बल्कि पहले मूल को माप के अनुसार काटकर मुख्य अंश मात्र को रखते हैं। इसे चउपट कहा जाता है। शेष डालियों, पत्तों और छालों आदि को एक विशाल गड्ढा खोदकर समाधि दे दी जाती है। फिर दूसरी लकड़ियों से एक विशाल ठेलागाड़ी बनाई जाती है और उस पर इस दारू को लादा जाता है। इस दारू शकट (ठेले) के चक्के बेर की लकड़ी से, धुरी इमली की लकड़ी से और दण्ड केन्दू वृक्ष की लकड़ी से बनाए जाते हैं। इसके बाद ब्राह्मण वेदोक्त मंत्र से शकट की प्रतिष्ठा करते हैं। दारू को शकट पर लादने के बाद पाटवस्त्र पहनाया जाता है और बेंत की रस्सी लगाई जाती है। आजकल बेंत

पुरी धाम के कुल मठों की संख्या 169 है।

की रस्सी पर्याप्त न मिलने के कारण कुछ बेंत की रस्सी रस्मवत् लगाकर नारियल की जटा से निर्मित रस्सी लगा दी जाती है।

श्रीमन्दिर की यात्रा तक भक्तजन इस शकट को खींचते हुए ले जाते हैं। रास्ते में स्थान-स्थान पर जनता द्वारा शकट की पूजा अर्चना की जाती है। घण्टे, ढोल, मृदंग की आवाज के साथ संकीर्तन करते हुए भक्त चलते हैं। भक्तों के कोलाहल के झंकृत परिवेश में शकट कई दिनों बाद पुरी पहुँचने पर पहले अठरनला के पास आमालचण्डी मन्दिर के पास रुकता है और गजपति महाराजा को खबर दी जाती है। महाराजा घण्टे, बाजे, छत्र और पाटहाथी भेजकर शकट का गाजे बाजे के साथ स्वागत करते हैं। असंख्य लोगों की भीड़ की हर्षध्वनि के मध्य दारूशकट बड़दाण्ड से चलता हुआ श्रीमन्दिर से सिंहद्वार तक पहुँचता है। मन्दिर के उत्तरद्वार से प्रवेश कराकर दारू को कोइलि बैकुण्ठ के दारूगृह में रखा जाता है। इस वक्त पणा (बेल, केले, नारियल मिश्रित शर्बत) का भोग लगता है।

इसी प्रकार सुदर्शन के बाद विभिन्न दिनों के अंतराल से क्रमशः बलभद्र, सुभद्रा एवं अंत में जगन्नाथ जी के दारू विधिपूर्वक वनयज्ञ के बाद आकर पुरी पहुँचते हैं। हर हाल में सभी दारू देवस्नान पूर्णिमा के पूर्व पहुँचाए जाते हैं।

कोइलि बैकुण्ठ मंदिर के उत्तर दिशा की ओर है। स्मृति शास्त्र के अनुसार 'उत्तरे सर्व देवता उत्तरे सर्वतीर्थाना'। इसी प्रकार उत्तर दिशा में देव का शमशान घाट है तथा नवकलेवर निर्माण भी उधर ही होता है और फिर बैकुण्ठ को गुप्त पीठ कहा जाता है। इसलिए यहाँ विग्रहों का निर्माण अत्यन्त गुप्त रीति से होता है। आषाढ़ महीने के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि तक दारू यहाँ रखे जाते हैं। इस काल में दारू को भोग लगाया जाता है। देवस्नान पूर्णिमा को देवों को स्नान कराए जाने के साथ-साथ बैकुण्ठ स्थित दारू को भी स्नान कराया जाता है।

स्नान पूर्णिमा के पहले दिन अर्थात् ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी को रात में बड़सिंहाल भोग के बाद महाप्रभु की पहुड़ आरती के बाद लक्ष्मी और मदनमोहन को दक्षिण गृह में ले जाया जाता है। सरस्वती और नीलमाधव को तख्त शय्या पर विराजमान कराया जाता है। इसके बाद महाप्रभु की मंगलार्पण नीति होती है। इसे पतिमहापात्र, पण्डा और मुदिरथ संपन्न करते हैं। इसके बाद डोरलागि नीति पूरी

पुरी धाम में सबसे पुराना मठ अंगीरा और भृगु मठ है।

की जाती है। फिर घण्टे, तुरही आदि गाजे-बाजे के साथ महाप्रभु को पहण्डि में स्नान वेदी तक लाया जाता है। इसे पंक्ति पहण्डि कहा जाता है। सुदर्शन, बलभद्र, सुभद्रा एवं जगन्नाथ को क्रमशः स्नानवेदी में लिया जाता है। महाजनगण मदनमोहन को विराजमान कराते हैं। इस समय में छामु खुंटिया महाप्रभु के आगे मणिमा मणिमा पुकारते हुए चलते हैं।

महाप्रभु की पहण्डि के वक्त गारदघर के सामने सात सीढ़ियों के पास महाप्रभु के केश और टाहिया लगाने की नीति होती है। महाप्रभु के स्नान मण्डप में विराजमान होने के बाद सुना-गोसाईं और मुदिरथ पण्डे शीतलादेवी के सामने स्थित स्वर्णकूप से जल लागर अधिवास गृह में रखते हैं। यहाँ घटुआरी गृह में से केशर, चन्दन, चुआ और कर्पूर आदि लाकर चलकुम्भ में डाले जाते हैं और ऊपर एक नया सिकोरा और नारियल रखा जाता है।

विग्रहों का श्रृंगार विधान होने के बाद गराबडु सेवक मुँह पर पट्टियाँ बाँधकर जल के छींकों को लेकर स्नान मण्डप तक आते हैं। घंटे और बाजे बजते हैं। चारों देवों के लिए चार बार में 108 घड़े जल आता है। इनमें से जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शन के लिए क्रमशः 35, 33, 22, 18 गागर जल लाकर स्नान हेतु रखे जाते हैं। पूजा समाप्ति के बाद प्रत्येक पंक्ति के गराबुड प्रत्येक पंक्ति के मेकाप को वह जल देते हैं और मेकाप से पूजापण्डागण जल लेकर देवों पर चढ़ाते हैं। इस वक्त घंटे, तुरही, बाजे गाजे बजते हैं। इसके बाद मुदिरथ तीनों बाड़ की राजकीय नीति करते हैं और इसके बाद स्नान मण्डप का छरा-पहँरा (बुहारना) होता है। इसके बाद जगन्नाथ जी का हाथीवेष होता है।

हाथीवेष के लिए गोपाल तीर्थ मठ से बलभद्र के श्रृंगार सामग्री, राघवदास मठ से जगन्नाथ एवं सुभद्रा की सामग्री आती है। इस वक्त भी घंटे और बाजे बजते हैं। कुछ लोग इसे गणेश वेश भी कहते हैं। वेष के बाद महाप्रभु की पूजा होती है। पूजा के बाद जनता को दर्शन दिया जाता है। इसके बाद महाप्रभु को पहण्डि कराके अणसर गृह में ले जाया जाता है। रास्ते में तोता-मैना मन्दिर और गरुड़ स्तम्भ के निकट पूजा अर्चना होती है।

ज्येष्ठ पूर्णिमा से आषाढ़ महीने की अमावस्या तक के समय को अणसर कहा

पुरी के जगन्नाथ मंदिर का निर्माण 12वीं सदी में गंगवंश के प्रतापी राजा चोलगंगदेव ने कराया था।

जाता है। नवकलेवर के वक्त यह 15 दिनों की अवधि बढ़कर डेढ़ महीने की हो जाती है, जिसे 'महाअणसर' कहते हैं।

कोइलि बैकुण्ठ में इसके पूर्व कई अस्थायी गृह- अंकुर-रोपण-गृह, निर्माण मण्डप, यज्ञ मण्डप, नृसिंह मण्डप, दो स्नान अधिवास गृह और एक न्यायदारू गृह निर्मित होते हैं। इन पर पुआल का छप्पर होता है और चारों ओर तालपत्र की चट्टियाँ बँधी होती हैं। इनमें मण्डप बना होता है। इसके पूर्व चारों दारू के लिए निर्मित चारों गृहों में दारू रखे हुए होते हैं।

इनमें से यज्ञगृह के निर्माण का तात्पर्य महत्वपूर्ण है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई 12 हाथ होती है। इसमें 16 खम्भे होते हैं और दुहरा छप्पर होता है। इसमें मध्य मण्डप में एक हाथ का हवन कुण्ड बना होता है, जिसमें मेखला योनि आदि बनी होती है। इसके अलावा यज्ञमण्डप में चारों दिशाओं में स्थित द्वारों में चारों वेदों के हवन के लिए चार छोटे कुण्ड बने होते हैं।

यज्ञ गृह की पश्चिमी दिशा में 16 हाथ लम्बा चौड़ा निर्माण मण्डप होता है, जिसमें विग्रहों का निर्माण होता है। इसमें विश्वकर्मा अत्यन्त गुप्त रूप से निष्ठापूर्वक विग्रह निर्माण करते हैं। निर्माण मण्डप के उत्तरी ओर अंकुर-रोपण गृह होता है।

यज्ञ मण्डप के पूर्व द्वार के पास दो स्नान मण्डप या स्नान अधिवास गृह बने होते हैं। इस गृह के ठीक पूर्वी दिशा में कोइलि बैकुण्ठ की प्राचीर से लगे दारूगृह बने होते हैं। दारूगृह के दाहिनी ओर नृसिंहगृह और न्यासदारू गृह निर्माण किए जाते हैं। इन सभी की छत पुआल के छप्पर की होती है और चारों ओर तालपत्र की चट्टियों की दीवार होती है।

स्नानपूर्णिमा के पूर्व ब्राह्मण शुभ मुहूर्त में पञ्चशस्य लेकर अंकुररोपण गृह में अंकुरोद्गम करते हैं। इस दिन से हर रात बलिदान दिया जाता है। दो ब्राह्मण व्रत रखते हुए अग्नि एवं शाला रक्षा के लिए नियुक्त किये जाते हैं। पुस्तकाचार्य के निर्देशानुसार मण्डलाचार्य विभिन्न गृहों में मण्डल लगाते हैं और स्नान पूर्णिमा को दारू को स्नान करते हैं। प्रतिष्ठा कार्य के लिए आचार्य, पुस्तकाचार्य, चरु, समिधाचार्य, ब्रह्मा व राजप्रतिनिधि आदि ब्राह्मणों को विधिपूर्वक नियुक्त किया

जगन्नाथ मंदिर ओडिशा स्थापत्य एवं मूर्तिकला का एक बेजोड़ साक्षात उदाहरण है।

जाता है।

दारूस्नान के बाद नृसिंह मण्डप में तख्तशय्या डालकर दइता और पतिमहापात्र दाहिने गृह से नृसिंह को लाते हैं। इसके बाद यज्ञ कर्म आरम्भ होता है। इस समय श्रीजगन्नाथ जी के जगमोहन में पंचरुद्र और पंचदेवी के पास जप, स्तुति, सहस्रनाम, भागवतपाठ, चण्डीपाठ, रुद्राभिषेक आदि कर्म संपन्न होते हैं।

मण्डल लगाने और शाला सजाने के बाद शालापूजा और वैष्णवाग्नि संस्कार होता है। इसके बाद शाला के विभिन्न कोनों में विभिन्न मण्डल लगातार पूजा कर्म होते हैं। शाला के मध्य में निद्राघट पूजा, अस्त्र पूजा आदि होती है। इसके अलावा कई होम, चतुर्वेद हवन आदि होते हैं। हवन हेतु गम्भारी समिधा का उपयोग होता है। इस प्रकार दैनिक हवन, शालापूजा, अग्निपूजा हवन आदि होते हैं। हवन नृसिंह मंत्रराज से होते हैं।

इस अवसर पर कोइलि बैकुण्ठ के स्नान अधिवास में 108 कलश जल लाकर उसमें औषधियाँ और तीर्थजल मिलाया जाता है। इस जल से अर्ध्याधिवास कराके रात में ढक कर रखा जाता है। भक्त दिनरात न्यासदारू को अधिवास गृह में चक्रारविन्द मण्डल पर तख्त डालकर विराजमान कराते हैं।

अगले दिन शालापूजा हवन के बाद दइतागण स्नान मण्डप में दारू को विराजमान कराते हैं। ब्राह्मण वेदमंत्रपाठ करते हैं और आचार्य दारू को स्नान कराते हैं। उसके बाद न्यासदारू को वहाँ से लाकर यज्ञशाला में इशानकोण में रखा जाता है। विधिपूर्वक प्रतिष्ठा कर्म और षोडशोपचार से दारूपूजा की जाती है। इधर निर्माण मण्डप में विग्रहों का निर्माण हो रहा होता है। दशमी की रात को एक चार चक्कों वाले रथ में बैठाकर मन्दिर के अंदरुनी परिक्रमा स्थल पर घुमाते हैं। कुछ लोगों के मत में यज्ञ नृसिंह को रथ में बैठाकर मन्दिर में परिक्रमा कराई जाती है। प्रतिष्ठा विधि नियमानुसार देवताओं की प्रतिष्ठा के बाद नगर भ्रमण एकान्त अपरिहार्य है। इसलिए इस कारण रथ में देवताओं को घुमाया जाता है। इस समय मंदिर की सफाई की जाती है। केवल दइता और पतिमहापात्र आदि रहकर इस रथ में देवताओं को भ्रमण कराते हैं।

यज्ञशाला में रोज हवन, शालापूजा और दश दिग्पालों की बलि आदि होती है।

श्रीमंदिर की ऊँचाई 214 फीट 8 इंच है।

दशदिग्पालों की बलि कान्ति पीठा से दी जाती है। त्रयोदशी के दिन प्रत्येक दिन की तरह ध्वजा, तोरण, वेद, इन्द्रादि दशदिग्पालों, 10 अस्त्र, अष्टरुद्र, अष्टक्षेत्रपाल, अष्टनाग, अष्टयागपत्नी, अष्टयोगिनी, दुर्गा, त्र्यम्बक आदि के पास और शाल में पूजा हवन होता है। त्रयोदशी के दिन रात्रि में नित्य की तरह कान्ति पीठा से दश दिग्पालों को बलि दी जाती है। ये सभी कार्य अत्यन्त गुप्तरीति से सम्पन्न होते हैं।

चतुर्दशी के दिन दैनिक हवन आदि के बाद तिल पायस की बलि दी जाती है। इसके बाद नए विग्रहों को सर्वोषधि जल से स्नान कराया जाता है और इसके बाद पुनर्वार हवन करके नए ठाकुरजी के सोते वक्त उनका प्राणन्यास कराया जाता है। इसके बाद विश्वकर्मा मूर्ति को श्रीसूक्त और पुरुष सूक्त से स्नान कराते हैं और इसके बाद दइतापतिगण मूर्ति को बैठाकर स्नान कराते हैं।

इन समस्त कर्मों के बाद गजपति महाराजा आकर यज्ञ में पूर्णाहुति देते हैं। यज्ञ समाप्ति के बाद दानविधि, आरती और पुष्पाञ्जलि करके पुण्याहवाचन कराकर अग्नि शान्त की जाती है। यज्ञकर्म और प्रतिष्ठाकर्म पूरे होने के बाद पतिमहापात्र को नवनिर्मित देवताओं का दायित्व दिया जाता है। इस दिन रात्रि में पति महापात्र अत्यन्त गुप्त रूप से महाप्रभु का घट परिवर्तन करते हैं।

इस घट परिवर्तन को 'ब्रह्म परिवर्तन' कहा जाता है। यह अत्यन्त गुप्त रूप से आषाढ़ महीने की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि के दिन अर्द्धरात्रि में किया जाता है। इस दिन महाप्रभु का बड़सिंहार धूप शेष होकर मंदिर का शुद्धिकरण हो जाता है और चारों द्वार बन्द रहते हैं। मन्दिर के अंदरुनी क्षेत्र में दइता और पतिमहापात्र के अलावा और कोई नहीं रहता। मन्दिर के बाहरी भाग में अर्थात् बाईस सीढ़ियों पर मन्दिर के कायस्थ अकेले श्री जगन्नाथ जी के पाटखण्डा (तलवार) लेकर पहरा देते हैं। इनको भी अंदरुनी भाग में जाने का अधिकार नहीं होता। मन्दिर के अंदरुनी क्षेत्र के सभी देव-देवियों का दायित्व दइतापति ले लेते हैं। मन्दिर के शुद्धिकरण के बाद दइतागण कोइलि बैकुण्ठ में जाकर शेष दारू को स्थायी दारू गृह में रखते हैं। इसके बाद नवनिर्मित विग्रहों को पहण्डि कराते हुए अणसर पिण्डि तक लाया जाता है। रात्रि में शुभवेला में पतिमहापात्र पुराने विग्रह से ब्रह्म

विश्व के लगभग 4000 जगन्नाथ मंदिरों में से पुरी धाम का मंदिर सबसे ऊँचा है।

निकालकर नए विग्रहों में स्थापित करते हैं।

कुछ लोग इस ब्रह्मपदार्थ को बुद्धदेव का दाँत, कुछ तांत्रिक अष्टधातु पत्र का यंत्र, कुछ श्रीकृष्ण का अदग्ध पिंड का नाभिकमल, कुछ सोने के शयन ठाकुर, कुछ लोग पारेवाला छोटा बक्सा बताते हैं तो कुछ लोग इन्द्रद्युम्न द्वारा निर्मित दारू विग्रह का अंश या श्रीकृष्ण के पंचभूतात्मक शरीर का एक अंश विशेष बताते हैं। कुछ लोगों के अनुसार यह एक अत्यंत मूल्यवान मणि या शालिग्राम होता है।

किंतु इस ब्रह्म पदार्थ को जीवन्त शालिग्राम सहित विग्रह निर्माण के समय में प्रतिष्ठित दारू खंड होना अधिक यक्तियुक्त माना जाता है। विभिन्न पुराणों में शालिग्राम या विष्णुशिला की पवित्रता तथा महत्व का वर्णन मिलता है।

जो भी हो, यह ब्रह्म पदार्थ सत्य, ज्ञान और अनन्तस्वरूप होता है। यह सर्वोपरि श्रेष्ठ होता है। यह आनन्द स्वरूप और अमृत स्वरूप होता है। वह शान्ति स्वरूप, विमल, अद्वितीय शुद्ध, पवित्र होता है।

इस प्रकार ब्रह्म सर्वसृष्टिकर्ता परमब्रह्म स्वरूप श्रीजगन्नाथ के नाभिकमल में विराजमान रहता है। यही ब्रह्म महाप्रभु की आत्मास्वरूप है। मानव शरीर में आत्मा की तरह श्रीजगन्नाथ जी के विग्रह में यह ब्रह्म विराजमान रहता है। ब्रह्म और आत्मा की समानता अथर्ववेद में वर्णित है। इस ब्रह्म पदार्थ को जानना भी क्षुद्र मानव के वश के बाहर की बात है। इसके ज्ञान के लिए प्रगाढ़ साधना तथा भगवान का आशीर्वाद नितान्त आवश्यक है।

ब्रह्म परिवर्तन के बाद पुराने विग्रहों को कोइलि बैकुण्ठ में शिआहि लता के नीचे कोठ सुआँसिआगण द्वारा खोदित गड्ढे में लाल कपड़े की शय्या पर लिटाकर कर्पूर, चन्दन लगा पाटवस्त्र से ढंक कर सुला दिया जाता है तथा गड्ढे को मिट्टी से भर दिया जाता है। यहाँ पुराने विग्रह गोलोक विश्राम करते हैं। इन विग्रहों के साथ के रथ सारथी, घोड़े, पार्श्वदेवता, तोता, द्वारपाल, ध्वजादण्ड और महाप्रभु के पलंग तथा शय्या आदि को भी समाधि दे दी जाती है।

भगवान श्रीकृष्ण के शिआहि लता के नीचे विश्राम करते वक्त जारा शबर के तीर से अंतिम सांस लेने की घटना को यह परम्परा प्रतिबिम्बित करती है। इन सब क्रियाओं के बाद दइतागण विधिपूर्वक हविष कर शुद्धिक्रियाएँ सम्पन्न करते हैं।

पुरी धाम का जगन्नाथ मंदिर पंचरथ आकार का है।

मृत्यु के बाद की शुद्धिक्रिया की तरह सभी कर्मकाण्डों का पालन होता है। घट में दीपक जलाने की तरह यहाँ मंगला के पास घटदीप जलाया जाता है। शुक्लपद्वा की नवमी तिथि को दइतागण मुक्ति मंडप में तेल मालिश करते हैं और फिर मार्कण्ड पुष्करिणी में क्षौरकर्म कर स्नान करते हैं। इस स्नान के बाद नए वस्त्र पहन कर मन्दिर लौटते हैं। मन्दिर के द्वार के निकट बाईस पावछों पर हल्दी-मिश्रित जल से पैर धोकर शान्ति उदक पीते हैं। इसके बाद महाप्रसाद सेवन करते हैं।

त्रयोदशी के दिन महाप्रभु के द्वादशाह के उपलक्ष्य में हजारों ब्राह्मणों, साधु-संतों, छतिशानियोग, दइता, मुक्तिमण्डप के पण्डितों और विशिष्ट व्यक्तियों को मन्दिर के प्रांगण में महाप्रसाद भोजन दिया जाता है।

कृष्ण चतुर्दशी से महाप्रभु का सप्ताभरण कार्य आरंभ होता है। शुक्लपक्ष की नवमी तक महाप्रभु के श्रीअंगों में श्वेत अंगराग आदि लगाए जाते हैं। इसके बाद पूर्ण श्रीअंगराग लगाए जाने के बाद नेत्रोत्सव और नवयौवन दर्शन होते हैं।

नवयौवन दर्शन के बाद श्रीमन्दिर में अन्यान्य नीतियों के पालन के बाद चारों देवताओं को 10 बोइराणी वस्त्र अर्पित किये जाते हैं। इसके बाद पतिमहापात्र अक्षत, कर्पूर, आरती, सातबत्ती और सांध्यकाहाली से वन्दापना करते हैं। तीन दत्तमहापात्र तीन चांदी के कटोरियों में काजल तैयार कर तीन तीलियों में पूजा पण्डा को देते हैं। पूजा पण्डा इसे ठाकुर जी के नेत्रों में लगाते हैं। इसे नेत्रोत्सव कहा जाता है। नेत्रोत्सव के बाद श्रीगुण्डिचा या महाप्रभु की रथयात्रा के लिए आयोजन होता है।

सतयुग का धाम बदरीधाम है।

(घ) नवकलेवर 1996

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्यंति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा, न्यान्यानि संगाति नवानि देही।।

जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को छोड़कर मनुष्य नये वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी प्रकार महाप्रभु जगन्नाथ अपने पुराने कलेवर को छोड़कर नए कलेवर धारण करते हैं, जिसे नव कलेवर कहा जाता है।

नव कलेवर का संबंध महाप्रभु की रथ-यात्रा के साथ जुड़ा हुआ है। यद्यपि यह रथ-यात्रा की तरह प्रतिवर्ष नहीं होता फिर भी ऐसी मान्यता है कि जिस वर्ष दो आषाढ़ लगता है उसी वर्ष महाप्रभु का नव कलेवर होता है। ऐसा भी देखा गया है कि प्रत्येक 12 वर्षों के अंतराल में नव कलेवर होता है। लेकिन ऐसा भी कभी-कभी संभव नहीं होता। जैसे 1977 के बाद वर्ष 1996 में नव कलेवर हुआ था।

वैसे तो प्रतिवर्ष तीनों विग्रहों (बलभद्रजी, सुभद्राजी और जगन्नाथजी) को अणसर के समय रत्नदेवी से उठाकर लाया जाता है और श्रृंगार पीढ़ा की विधि-पूरी की जाती है। इन्हें चंदन का सात तह लेप लगाया जाता है। 108 घड़े चंदन मिश्रित जल से स्नान कराया जाता है और तब नये वस्त्र आदि पहनाये जाते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि सात तह में मात्र छह तह तक ही स्नान कराया

त्रेतायुग का धाम रामेश्वरम् है।

जाता है लेकिन नव कलेवर के समय पूरी तरह से दारू विग्रहों को ही बदल दिया जाता है और जो नये विग्रह तैयार होते हैं। वे 'दारू' अर्थात् नीम के होते हैं।

नव कलेवर की विधि बड़ी ही रोचक होती है और यही कारण है कि 1996 में नव कलेवर रथ-यात्रा देखने करीब 15 लाख लोग पुरी आए थे।

1996 के नव कलेवर विधि के तहत 29 मार्च 1996 से वनयज्ञ शुरू हुआ था। अलग-अलग स्थानों से दारू लाए गए थे। पहली जून से विग्रह निर्माण शुरू हुआ था।

मान्य परंपरा के अनुसार श्रीमंदिर का खुरी नाइहक (भविष्य वक्ता) सबसे पहले बतलाता है कि किस वर्ष दो आषाढ़ पड़ेगा। उसके बाद पुरी के राजा विभिन्न मठों के प्रतिनिधियों एवं मुख्य सेवकों से विचार-विमर्श करके पवित्र दारू खंभ की खोज हेतु तिथि निर्धारित करते हैं। नव कलेवर वाले वर्ष अणसर की अवधि 15 दिन की जगह एक महीने 15 दिन तक बढ़ा दी जाती है। चैत महीने के शुक्ल पक्ष के 10वें दिन दोपहर के बाद पूजा होती है जिसमें पूजा के बाद पति महापात्र या शबर पुजारी तीन ''आज्ञामाल'' लेते हैं जो लाल रंग के धागे में गुंथा होता है जिसके मध्य भाग में गांठ के रूप में निरमाल्या बंधा होता जिसके द्वारा पता चलता है कि किस विग्रह के साथ कौन-सी पूजा विधि अपनायी जाएगी। जब पतिमहापात्र तीन मालाओं को दईतागण हो देता है, जब सुदर्शन की आज्ञमाल को अपने लिए रख लेता है। तब भीतर छू महापात्र अपने हाथ से पति महापात्र के सिर पर एक लाल पाट बांधता है। दइतागण के सिर पर जो लाल पाट बांधा जाता है उसकी लंबाई चार फीट होती है जबकि पति महापात्र के सिर पर बांधे जाने वाला पाट बड़ा होता है।

1996 में इस विधि के संपन्न होने के उपरान्त एक छोटा जुलूस पुरी के राजा के पास गया। वहां राजा ने उनकी मंगल यात्रा हेतु पान और सुपारी दी और उनके लक्ष्य में सफल होने की मंगल कामना की।

वह दल जिसमें दइतागण, पुजारी और विश्वकर्मा (बढ़ई) आदि थे, उस रात जगन्नाथ वल्लभ मठ में विश्राम किए और दूसरे दिन सुबह अपने वनयज्ञ के लिए प्रस्थान किए। रास्ते में वे सबसे पहले पुरी से लगभग 80 किलोमीटर दूर उत्तरीपूर्वी दिशा में स्थित काकटपुर आए, जहाँ मंगलादेवी का मंदिर है। वे मंगलादेवी से मार्गदर्शन लिए। उनके साथ यज्ञ आदि की सामग्री से लदी हुई एक गाड़ी भी थी।

द्वापर युग का धाम द्वारकापुरी है।

कहा जाता है कि एक समय में काकटपुर नीम के पेड़ों से भरा जंगल था। सच पूछा जाय तो आज भी पर्याप्त मात्रा में काकटपुर में नीम के पेड़ हैं। हजारों वर्ष पूर्व इसी काकटपुर से नीम काष्ठ लेकर एक समय में नवकलेवर हुआ था। उसी समय से मंगलादेवी की पूजाकर, वनयज्ञ की आशीष लेकर दल आगे बढ़ता है।

उसके बाद दल देउली मठ गया जो वहाँ से कुछ ही दूरी पर पवित्र नदी प्राची के तट पर अवस्थित है। वहाँ वे पूजा व्रत किए और रात में देवी मंगला ने उनसे प्रसन्न होकर उन्हें बताया कि किस दिशा में किस देव-देवी हेतु पवित्र नीम काष्ठ मिलेगा। देवी मंगला के मार्गदर्शन के अनुसार ही सुबह उठकर उन दिशाओं में दल निकल पड़ा।

कहा जाता है कि देवी मंगला की प्रेरणा से चार अलग-अलग नीम वृक्ष चार अलग-अलग दिशाओं में उपलब्ध हुए जिसकी जानकारी दइतागण दिए। सन् 1930 ई. में नवकलेवर के समय प्रभु जगन्नाथ का पवित्र नीम काष्ठकटक जिले के जगतसिंहपुर थाना अंतर्गत रबदीधरकनपुर गाँव में मिला था। कहा जाता है कि पवित्र नीम का पेड़ दो नदियों कुशभद्रा और देवी नदी के बीच स्थित टापू में था। उस वृक्ष पर पद्म, शंख, गदा और चक्र के चिह्न थे। कहा जाता है कि उस वृक्ष की जड़ में एक काला नाग था। बलभद्रजी का पवित्र नीम काष्ठ उस समय पुरी जिले के बाली पटना थाना अंतर्गत वनमालीपुर गाँव में पाया गया था। उस पेड़ की सात शाखाएँ थीं। यह भी कहा जाता है कि उस नीम पेड़ से 2 हाथ की दूरी पर एक सर्प था जो उस नीम पेड़ की जड़ को जकड़े हुए था। सुभद्राजी का पवित्र नीम काष्ठ पुरी जिले के नीमापड़ा थाना अंतर्गत बड़ारन गाँव में पाया गया था। इस पेड़ की पाँच शाखाएँ थीं और पेड़ पर चक्र आदि के चिह्न थे और साँप था।

1996 में जैसे ही पवित्र नीम पेड़ों का पता लगा लिया गया, उन पर आज्ञामाल चढ़ा दी गई। उसके बाद एक शबरपल्ली उस पेड़ के चारों ओर बनाई गई। फिर उस पवित्र नीम पेड़ से नीचे यज्ञ शुरू हुआ। विशेष प्रकार से हजारों लाखों की संख्या में श्रद्धालु भक्त-गण वहाँ पहुंचकर उस दारू ब्रह्म के दर्शन किए। यज्ञ की समाप्ति के उपरांत सबसे पहले दइतापति उस पवित्र नीम पेड़ पर पूर्व विराजमान देव-देवियों से आग्रह किया कि वे उसे पवित्र कार्य हेतु छोड़कर अन्यत्र चले जाएँ

कलियुग का सभी धामों में अन्यतम धाम श्री जगन्नाथ पुरी है।

और तब वह चांदी की कुल्हाड़ी से उस पवित्र नीम पेड़ को काटा। उसके बाद विश्वकर्मा (बढ़ई) ने लोहे की कुल्हाड़ी से काटा। दारू खंभ को चार गाड़ियों में लादकर पुरी लाया गया, शेष पेड़ के हिस्सों को (पत्ते आदि) वहीं जमीन के नीचे गाड़ दिया गया। श्रद्धालु भक्तों की भीड़ पूजा-अर्चना, कीर्तन एवं संकीर्तन आदि करती हुई खुशी-खुशी गाड़ी को खींचकर पुरी तक लाई।

सबसे पहले सुदर्शनजी का पवित्र दारू खंभ लाया गया, उसके बाद बलभद्रजी का, उसके बाद सुभद्राजी का और अंत में श्रीजगन्नाथजी का। जब दल पुरी पहुँचा, तब वह सबसे पहले नृसिंह मंदिर के पास रुका जो गुण्डिचा मंदिर के पास है और तब पुरी नरेश को खबर दी गई कि पवित्र दारू ला दिया गया है। जैसे ही राजा को यह शुभ संदेश मिला, वैसे ही सेवायतों का एक रंगा-रंग जुलूस लेकर वे पहुँचे और उस पवित्र दारू खंभ को खींचकर श्रीमंदिर के उत्तरी द्वार से भीतर लाए और कोइली बैकुंठ नामक जगह पर रखे। स्नान यात्रा के पश्चात् कोइली बैकुंठ से पवित्र दारू खंभ को विश्वकर्मा मंडप में विग्रह तैयार करने हेतु लाया गया। आषाढ़ महीने के शुक्ल पक्ष के 14वें दिन विग्रह को तैयार कर दिया गया और उसी दिन उन्हें शाम से लेकर दूसरे दिन दोपहर तक पूरी तरह से रंगकर सुसज्जित कर दिया गया। चारों तरफ से श्रीमंदिर के दरवाजे बंद कर दिए गए। चार दयिता महापात्र अथवा पुजारी ब्रह्म-पिंड को नवीन विग्रह में प्रतिष्ठित कर दिए। ऐसा भी कहा जाता है कि जो दइता ब्रह्म पिंड को प्रतिष्ठित करता है वह कभी उस दृश्य को देख नहीं सकता है। कुछ लोग मानते हैं कि वह ब्रह्म पिंड शालिग्राम पत्थर होता है। नव कलेवर के दौरान पाया गया कि जो पुजारी वह पवित्र कार्य करता है, वह शीघ्र ही स्वर्ग सिधारता है, पर यह बात गलत है।

ब्रह्म-पिंड की स्थापना के बाद विग्रहों की 16 उपचार विधि से पूजा की गई और तब पुराने विग्रहों को दइतागण उठाकर कोइली बैकुंठ में लाए जहां उनके द्वारा उन पुराने विग्रहों को जला दिया गया। यहाँ एक रोचक परंपरा है कि जिस प्रकार हिंदू धर्म में दाह संस्कार के बाद व्यक्ति को जो औपचारिकताएँ पूरी करनी होती है वे सारी औपचारिकताएँ विग्रह को दाह संस्कार के बाद दइतागण ने भी कीं।

नव कलेवर का त्यौहार न केवल प्रभु जगन्नाथ की सांसारिक परंपराओं को सत्य सिद्ध करता है बल्कि शरीर और आत्मा, आत्मा और जीव के यथार्थ संबंधों

श्रीमंदिर के ऊपरी भाग में नीलचक्र है जिससे लगा हुआ पतितपावन बाना है।

को भी स्पष्ट करता है।

वर्ष 1996 प्रभु जगन्नाथ के नवकलेवर का वर्ष था। इसके तहत 29 मार्च से वनयात्रा शुरू हुई थी। चार अलग-अलग दिशाओं से पवित्र दारू खंभ लाया जा चुका था। जैसे सुदर्शन का दारु कटक जिले के पानीमल गाँव से, सुभद्राजी का समुद्र के किनारे अस्तरंग के पास मालदा गाँव से, बलभद्रजी का कटक से 40 किलोमीटर दूर सालेपुर के पास रामचंद्रपुर से और जगन्नाथजी का खोरधा शहर से 8 किलोमीटर दूर दधीमाच्छगाड़िया गाँव से। जंगल यात्रा को नेतृत्व किया था विद्यापति ने और इनके साथ कुल सौ सेवायत आदि गए थे।

अब श्रद्धालु भक्त आनेवाले नवकलेवर की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सच है कि वह भक्त धन्य है जिसने अपने जीवन काल में कम से कम एक बार नवकलेवर की पावन रथ-यात्रा को देखा है।

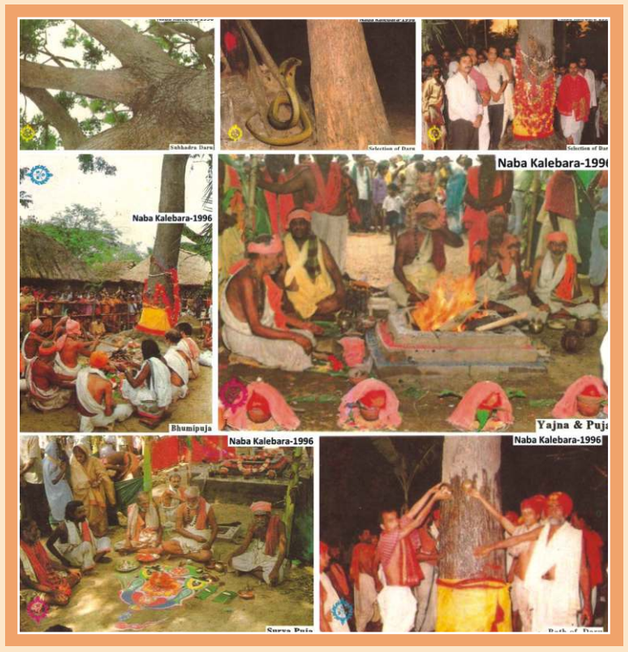

नीलचक्र आठ अलग-अलग धातुओं से निर्मित है।

पूर्ण दारुब्रह्म जगन्नाथ जी का अलौकिक सांस्कृतिक महोत्सव रथयात्रा: 2015

भारत की संस्कृति विश्व की एक अनोखी संस्कृति है। इसमें अनेकता में एकता का संदेश है। राम, कृष्ण, गौतम और गांधी आदि ने आर्यावर्त के धरा-धाम पर अवतार लेकर अपने आदर्श जीवन से इस संस्कृति को शाश्वत जीवन मूल्यों की हिफाजत का आदर्श बना दिया है। इस संस्कृति में व्यक्तिगत संस्कार, पारिवारिक संस्कार, सामाजिक संस्कार के साथ ही साथ आध्यात्मिक संस्कारों और जीवन मूल्यों को विशेष महत्व दिया गया है। इस संस्कृति में भारतीयता को बचाये रखने की अभूतपूर्व क्षमता है। यह संस्कृति विशाल भारत को एक सूत्र में बांधे हुए है।

भारतीय संस्कृति का पर्याय है- जगन्नाथ संस्कृति। जगन्नाथजी ओडिशा के पुरी धाम में निवास करते हैं। इसीलिए इस संस्कृति को ओडिया संस्कृति भी कहते हैं। उनका एक मानव के रूप में पुरी धाम में सोना, जागना, दैनिक कार्यों

नीलचक्र की परिधि 36 फीट और ऊँचाई 11 फीट 8 इंच है।

से निवृत्त होना, नाश्ता करना, 56 प्रकार का भोजन करना, समय-समय पर अपनी रूचि के अनुसार वस्त्र धारण करना, ओडिशी संगीत एवं नृत्य का आनंद लेना, सब कुछ एक मानव की तरह आचरण करना उनके अलौकि मानवीय रूप का ही आदर्श है। उनके दरबार में आने वाले समस्त भक्तगण उनके सेवक होते हैं। इसीलिए तो पुरी के जगपति महाराज श्री श्री दिव्यसिंहदेवजी उनके प्रथम सेवक माने जाते हैं। जगन्नाथ जी की सेवा का पहला हक उन्हीं का है। पुरी के शंकाराचार्य पूज्यपाद स्वामी निश्चलानंद सरस्वतीजी महाराज जगन्नाथजी की वार्षिक पूजा अर्थात् रथयात्रा आदि के लिए ही गोबर्द्धनपीठाधीश हैं। जगन्नाथजी अपने देश ओडिशा के गृहदेवता, ग्राम्य देवता एवं प्रांत देवता भी हैं। जीवन के पाँचों संस्कार की अनुमति उन्हीं से ओडिशावासी लिया करते हैं। वे ओडिशा संस्कृति के केन्द्र हैं। यहाँ की उत्कृष्ट समस्त कलाएँ, रीति-नीति, परंपराएँ, कला और साहित्य– सब कुछ इन्हीं के द्वारा संचालित होता है।

जगन्नाथ संस्कृति को बचाये रखने के लिए और वेदों में वर्णित जगन्नाथ संस्कृति के आधार पर ही पूरे विश्व के जगन्नाथ मंदिरों में जगन्नाथजी के पूजन की रीति-नीति में एकरूपता बनी रहे इसके लिए 2012 की 9 फरवरी से लेकर 14 फरवरी, 2012 तक एक पुरी धाम में एक नई पहल की गई, जिसका नाम दिया गया 'श्रीजगन्नाथ पंचरात्र महोत्सव- 2012' जिसे आयोजित किया श्रीमंदिर प्रशासन, पुरी के शंकराचार्य पूज्यपाद स्वामी निश्चलानंद सरस्वतीजी महाराज, पुरी के गजपति महाराज श्री दिव्यसिंहदेवजी एवं कोलकाता श्री जगन्नाथ सेवा समिति और इस संगोष्ठी में शामिल हुए विश्व के अधिकांश जगन्नाथ मंदिरों के प्रमुख समेत कुल 2000 साधु-संत। इस समागम में जगन्नाथ संस्कृति को बचाने के लिए अनेक प्रकार के दिशानिर्देश आदि भी जारी किए गए।

पुरी धाम में 12 महीनों में जगन्नाथजी की 13 यात्राएँ अनुष्ठित होती हैं। जगन्नाथजी जो कुछ भी करते हैं उनका सीधा संबंध उनके भक्तों की इच्छा से जुड़ा होता है। जगन्नाथजी के लिए न तो कोई बड़ा है और न ही कोई छोटा। उनके दरबार में न तो भाषा की दीवार है और न ही जातीयता का बंधन। न प्रांतीयता का मोह है और न ही किसी प्रकार से लिंग का भेदभाव। कहते हैं विश्व की तमाम संस्कृतियाँ और सभ्यताएँ आकर मिल जातीं महाप्रभु की विश्व प्रसिद्ध 'रथयात्रा' नामक

जो विजय ध्वज श्रीमंदिर के ऊपर सदा लहराता रहता है, उसे पतितपावनी बाना कहा जाता है।

सांस्कृतिक महोत्सव में और महाप्रसाद पाती हैं- एकता, शांति, मैत्री, भाईचारे और विश्ववंधुत्व का। जगन्नाथजी पुरी में वैष्णव, सौर, शैव, शाक्त और गाणपत्य हैं। वे अपने भक्तों को अपने सांस्कृतिक महोत्सव और अपने दर्शन के लिए स्वयं बुलाते हैं। उनसे कहते हैं कि भक्त अपना अहंकार त्यागकर उनकी शरण में आ जाये और यही कारण है कि उनके दरबार में हाजिरी लगाने वाले चैतन्य महाप्रभु से लेकर गोस्वामी तुलसीदास, गुरुनानकदेवजी और कबीरदास सभी रहे हैं। आज के संयुक्त परिवार की अवधारणा को अगर किसी ने जीवित रखा है तो वह हैं जगन्नाथजी, जो अपने बड़े भाई बलभद्र जी, जिनके पास अपार बल रहने के बावजूद भी वे भद्रता के आदर्श हैं, सदा उनके साथ रहते हैं। उनकी लाड़ली छोटी बहन भद्रता की आदर्श बनी सुभद्राजी उनके साथ अपने रत्नवेदी पर विराजमान हैं। अगर उन्हें कोई भी काम करना होता है अथवा किसी यात्रा पर निकलना होता है तो वे सबसे पहले अपने बड़े भाई को आगे करते हैं उसके बाद अपनी बहन को और सबसे अंत में अपने आप निकलते हैं। ऐसी मान्यता है कि इसी शाश्वत पारिवारिक परंपरा के कारण उनके बड़े भाई बलभद्रजी को अतीत, बहन सुभद्राजी को वर्तमान और स्वयं जगन्नाथजी को भविष्य का प्रतीक माना जाता है।

जगन्नाथजी की चंदनयात्रा, महास्नानयात्रा, रथयात्रा, बाहुड़ा यात्रा आदि पुरी धाम का सांस्कृतिक महोत्सव हैं, जिनमें रथयात्रा सबसे लोकप्रिय एवं विश्वविख्यात यात्रा है। यह सांस्कृतिक महोत्सव 18 जुलाई 2015 को है।

ओडिशा जिसे 'उड्र', 'उत्कल' और कलिंग नाम से सब जानते हैं, वहां के पुरी धाम में वैसे तो यह सांस्कृतिक महोत्सव रथयात्रा मात्र एक दिन का ही होता है लेकिन इसकी तैयारी करीब दो महीने पूर्व से ही आरंभ हो जाती है।

यह रथयात्रा अपने आप में एक सांस्कृतिक महोत्सव है, जिसमें जाति, धर्म, भाषा, प्रान्त और लिंग का कोई भेदभाव नहीं होता। लगभग एक हजार सालों से पुरी धाम में आषाढ़ शुक्ल द्वितीया के दिन रथयात्रा निकाली जाती है। प्रतिवर्ष तीन नए रथ बनाए जाते हैं। उन रथों पर अलग-अलग तोरण-पताकाएँ लगाए जाते हैं और रथयात्रा के एक दिन पहले श्रीमंदिर के सिंहद्वार के ठीक सामने लाकर खड़ा कर दिया जाता है। दूसरे दिन श्रीमंदिर के रत्नवेदी से तीन देव विग्रहों को सुदर्शनजी

पतितपावन बाना लगभग 150 फीट का होता है।

समेत पहण्डी विजय के साथ उनके अपने रथों पर आरुढ़ कराया जाता है। पुरी के नरेश जो जगन्नाथजी के प्रथम सेवक माने जाते हैं, उनके द्वारा तीनों रथों का छेरापहंरा होता है। रथों के साथ उनके अपने-अपने घोड़ों को जोड़ा जाता है और जगन्नाथ भक्तों द्वारा रथों को खींचकर गुण्डीचा मंदिर लाया जाता है, जहाँ पर ये देव विग्रह सात दिनों तक विश्राम करते हैं। गुण्डीचा मंदिर श्रीमंदिर से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है।

कुल दो महीनों की औपचारिकता वाली निराली 2015 की रथ यात्रा का शुभारंभ 18 जुलाई को होगा, फिर बाहुड़ा यात्रा, जिसके उपरांत सोना वेश होगा और लक्ष्मीजी की अनुमति से जगन्नाथजी अपने श्रीमंदिर के रत्नवेदी पर पुनः आरुढ़ होंगे।

पुरी धाम में अक्षय तृतीया की परंपरा

पिछले लगभग हजार सालों से अक्षय तृतीया मनाने की सुदीर्घ परंपरा पुरी धाम में देखने को मिलती है। वर्ष 2015 की अक्षय तृतीया 21 अप्रैल को बड़े ही धूमधाम के साथ मनाई गई। यह कहना कोई अतिश्योक्ति की बात नहीं होगी कि महाप्रभु जगन्नाथ के देश ओड़िशा में अक्षय तृतीया का सबसे अलग और हर तरह से विशेष महत्व है। 'अक्षय' शब्द का अर्थ है- 'जिसका क्षय या नाश न हो' और जो तिथि कभी भी क्षय नहीं होती है वह है 'अक्षय तृतीया'। वैशाख शुक्ल पक्ष की तृतीया के दिन ही भगवान परशुराम का जन्म हुआ था इसलिए इस तिथि को परशुराम जयंती के रुप में सनातनधर्मी मनाते हैं। इसी तिथि के दिन से ही त्रेता युग का शुभारंभ हुआ था। इसी दिन से भगवान बदरीनाथ के कपाट हर साल खुलते हैं। इस दिन अपने पूर्वजों की आत्मा की चिर शांति के लिए दान-पुण्य का भी विशेष महत्व वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण आदि में बताया गया है। इसी दिन लोग भगवान कृष्ण का भी पूजन करते है और कहते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण का इस कलियुग में वास्तविक रुप जगन्नाथपुरी में देखने को मिलता है। आज के दिन गंगा जैसी पवित्र नदियों में स्नान और दान का विशेष महत्व बताया गया है। इसी दिन से सतयुग का भी आरंभ हुआ था। अक्षय तृतीया के दिन पूजा-पाठ करने वाला धन, जन और सम्मान से परिपूर्ण हो जाता है।

पुरी के गजपति महाराज जी श्रीमंदिर के प्रथम और प्रधान सेवक हैं।

ओड़िशा के प्रत्येक घर, गाँव और सच कहा जाये तो पूरे प्रांत में अक्षय तृतीया का विशेष महत्व देखने को मिलता है। आज से ही ओड़िशा के किसान अपने खेतों में नयी फसल की बोआई का शुभारंभ करते हैं। आज के ही दिन लोग अपने नये घर का गृहप्रवेश करते हैं। अपनी नई दुकानों और अपने नये कारोबार आदि का शुभारंभ करते हैं। अपने नये वैवाहिक संबंधों एवं सामाजिक रिश्तों का श्रीगणेश करते हैं। सच कहा जाये तो ओड़िशा के जगन्नाथ पुरी धाम में इस तिथि का अपना एक अलग सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक महत्व है। यही नहीं, चिर प्रतीक्षित अक्षय तृतीया की पावन तिथि को हर साल की तरह इस साल भी ओड़िशा के माननीय मुख्यमंत्री श्री नवीन पटनायक ने सबसे पहले भुवनेश्वर के मारीची गांव में हल का मुट्ठ पकड़ा और नई फसल की बोआई के सिलसिले का शुभारंभ किया। गौरतलब है कि हर साल एक तरफ अक्षय तृतीया के दिन ओड़िशा के पुरी धाम में जगन्नाथजी की विश्व प्रसिद्ध रथयात्रा के लिए नये रथ के निर्माण का कार्य आरंभ होता है, वहीं उनकी विजयप्रतिमाओं की 21 दिवसीय बाहरी चंदन यात्रा भी आरंभ हो जाती है। गौरतलब है कि ओड़िशा में अक्षय तृतीया के दिन से ही खेतों में बोआई आरंभ होती है।

चन्दनयात्रा

मर्त्यबैकुण्ठ पुरी धाम में अक्षय तृतीया के दिन से ही भगवान जगन्नाथ की विजय प्रतिमाओं की चंदन यात्रा का शुभारंभ 21 अप्रैल 2015 को हुआ जो 21 दिनों तक चला। इस दौरान जगन्नाथजी एक साधारण मनुष्य की तरह शारीरिक सुख-दु:ख का अनुभव करते हैं। यहाँ तक कि वे एक साधारण मानव की तरह वैशाख मास और जेठ मास की भीषण गर्मी से परेशान होकर जलक्रीड़ा करना चाहते हैं, नौका विहार करना चाहते हैं। चंदन यात्रा जगन्नाथजी की इसी मानवीय लीला का एक जीवंत रूप है।

अरुणस्तंभ पहले कोणार्क सूर्य मंदिर में था।

जगन्नाथ जी की विजय प्रतिमा मदनमोहन की चंदन यात्रा नरेंद्र तालाब में आरंभ होती है। पूरे 21 दिनों तक यह यात्रा एक शोभा यात्रा के रूप में श्रीमंदिर के सिंहद्वार से विशालकाय शोभायात्रा के रूप में निकाली जाती है और नगर परिक्रमा के उपरांत श्रीमंदिर के उत्तर दिशा में लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित नरेंद्र तालाब के समीप संपन्न होती है। श्रीमंदिर में इन 21 दिनों तक पूरी रीति-नीति से हर दिन 'जात भोग' निवेदित करने के उपरांत भगवान जगन्नाथ की विजय प्रतिमा मदनमोहन, रामकृष्ण, लक्ष्मी, सरस्वती आदि को स्वतंत्र पालकी में बिठाकर, जिसे विमान कहा जाता है, सिंहद्वार की 22 सीढ़ियों के सामने लाया जाता है। वहाँ पर पहले से ही प्रतीक्षारत पाँच पाण्डव, लोकनाथ, मार्कण्डेय, नीलकण्ठ, कपालमोचन, जंबेश्वर के साथ शोभायात्रा आरंभ होती है। आगे-आगे बनाटी, ओड़िशा के परंपरागत रणकौशल का प्रदर्शन, तलवार चालन का प्रदर्शन, पाइक नृत्य के प्रदर्शन और साथ में घड़ियालघण्ट, भेरी, तुरही जैसे अनेक परंपरागत वाद्य यंत्रों की मधुर ध्वनियों तथा जयघोष के बीच भजन-संकीर्तन के साथ अतिमोहक शोभायात्रा निकाली जाती है। इस शोभा यात्रा में श्रीमंदिर के अनेक सेवायत, श्रद्धालु भक्तगण, देश-विदेश के हजारों भक्त स्वेच्छापूर्वक हिस्सा लेते हैं।

लगभग 3 एकड़ में फैला पुरी धाम के नरेंद्र तालाब में चंदनयात्रा हर साल आयोजित होती है। यह अपने सरोवर अपने आप में एक स्वच्छ एवं शीतल सरोवर माना जाता है। यह 253.30 मीटर चौड़ा तथा 266 मीटर लंबा है। तालाब के दक्षिण दिशा में एक पुल है, जिसके द्वारा चंदन तालाब के चंदन घर को जोड़ा गया है। चंदन तालाब में जगन्नाथजी की विजय प्रतिमाओं को नौका विहार के लिए पहले से ही गजदंत आकार की नौकाएँ जो देखने में हंस जैसी दिखती हैं, उसे हर तरह से सुसज्जित कर पहले से ही रखा जाता है। नरेंद्र तालाब को पुरी तरह से बिजली की रोशनी से आलोकित कर दिया जाता है। 21 दिनों तक जगन्नाथजी की विजय प्रतिमाओं को दिन में एक बार तथा रात में 21 बार नौका विहार कराया जाता है और उस तालाब के बीचोंबीच चंदन घर में उनके अत्यधिक स्नान करने के कारण आराम के लिए रखा जाता है, जहाँ पर वे एक साधारण मानव की तरह विश्राम करते हैं। उनके बदन पर चंदन का लेप लगाया जाता है और उन्हें मल-मल कर स्नान कराया जाता है।

अरुणस्तंभ 13वीं सदी में निर्मित किया गया था।

देव स्नान पूर्णिमा

2 जून, 2015 को ज्येष्ठ मास की शुक्लपक्ष की पूर्णिमा तिथि को संपन्न हुई पुरी धाम के जगन्नाथजी की देवस्नान यात्रा। उस दिन श्री मंदिर की रत्न वेदी से भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा के साथ सुदर्शन और मदनमोहन आदि को भी पहण्डी विजय कराकर श्री मंदिर के उत्तर-पूर्व हिस्से में अवस्थित आनंद बाजार में देवस्नान मंडप पर लाया गया। वहाँ पुरी के गजपति जो उनके प्रथम सेवक हैं श्री श्री दिव्य सिंहदेव के द्वारा पूरी रीति-नीति के साथ छेरा पहंरा किया गया। श्री मंदिर के उत्तर दिशा में अवस्थित माँ विमलादेवी के स्वर्ण कूप से 108 स्वर्ण कलश पवित्र जल लाया गया और सभी देवी विग्रहों को एक साधारण मानव की तरह मल-मल कर नहलाया गया। जगन्नाथजी के दक्षिण भारत के एक अनन्य भक्त श्री विनायक भट्ट की इच्छानुसार उन्हें गज वेश में प्रतिष्ठित किया गया, सुशोभित किया गया। अत्यधिक स्नान करने के कारण जगन्नाथजी बीमार पड़े और उन्हें तुरंत उन्हें बीमार कक्ष में लाया गया। जगन्नाथ जो साक्षात

अरुणस्तंभ लगभग 10 मीटर ऊँचा है।

ओंकार स्वरूप हैं, स्वयं प्रकाशमान हैं बीमार पड़कर अपने बीमार कक्ष में रहे। सबसे रोचक बात तो यह है कि पुरी धाम में जब भगवान जगन्नाथ गजवेष धारणकर अपने आस-पास रखे समस्त व्यंजनों को एक गज की तरह ग्रहण करते हैं। ये विशालकाय हाथी के सूंड की तरह अपना हाथ बढ़ाकर अपने आगे-पीछे, बायें-दायें रखे सभी व्यंजनों को अपनी इच्छानुसार एक दिन ग्रहण करते हैं लेकिन वे जैसे ही अपने बीमार कक्ष में 15 दिनों के लिए चले जाते हैं वहीं से उनका नारायण रूप आरंभ हो जाता है। 15 दिनों तक आयुर्वेद सम्मत विधि से उनका उपचार किया जाता है। श्री मंदिर के कपाट को 15 दिनों के लिए बंद कर दिया जाता है। श्रीमंदिर में कोई भजन समारोह नहीं होता। संकीर्तन आदि भी नहीं होता। कहीं से किसी प्रकार की आवाज नहीं की जाती। विष्णु सहस्त्रनाम का जाप भी मौन चलता है। देवलोक में विराजमान देवतागण ही इस अनुपम दैवी रूप का साक्षात आनंद लेते हैं। धरती के समस्त वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य और सौर भक्त महाप्रभु जगन्नाथ के इसी नारायण रूप के दर्शन हेतु लालायित रहते हैं जो वे अपने अणसरपीण्ड पर विराजमान होकर ज्ञानचक्षु के माध्यम से दर्शन देते हैं।

भगवान जगन्नाथ के बीमार होने की हालत में उनके भक्त उनके दर्शन पुरी से थोड़ी दूर स्थित भगवान अलार नाथ के दर्शन के रूप में करते हैं। अलार नाथ की प्रतिमा काले प्रस्तर की है जो भगवान विष्णु के एक रूप माने जाते हैं। वहाँ भक्त खीर ग्रहण करते हैं। जगन्नाथ संस्कृति के आधार पर ऐसी मान्यता है कि चूंकि भगवान अलार नाथ भी भगवान विष्णु के ही अवतार हैं इसलिए भगवान जगन्नाथ के भक्त भगवान जगन्नाथ के दर्शन के साथ उनके प्रिय भोग खीर को साल में एक बार ब्रह्ममगिरि में अवश्य ग्रहण करते हैं।

भगवान जगन्नाथ जब पूरी तरह से स्वस्थ हो जाते हैं तो उन्हें पुनः स्नान कराकर नवयौवन वेश में सजाया जाता है। श्री मंदिर प्रशासन के सूत्रों के अनुसार 17 जुलाई 2015 को भगवान जगन्नाथ का नवयौवन दर्शन होगा और 18 जुलाई 2015 को आषाढ़ शुक्ल द्वितीया के दिन उनकी विश्व प्रसिद्ध पावन रथ यात्रा निकलेगी जो अपने आप में एक सांस्कृतिक महोत्सव होगा।

बलभद्र को शिव, सुभद्रा को ब्रह्मा एवं जगन्नाथ को विष्णु रूप में दर्शन करने की परम्परा है।

रथ निर्माण

प्रतिवर्ष तीन नये रथ बनाये जाते हैं। रथ निर्माण की अत्यंत गौरवशाली परम्परा रही है। इस कार्य को वंशानुक्रम से सुनिश्चित बढ़ई ही संपन्न करते हैं। निर्माण का कार्य पूर्णत: शास्त्र सम्मत विधि से होता है। विशेषज्ञों का मानना है कि तीनों ही रथ जगन्नाथजी का नन्दिघोष रथ, बलभद्रजी का तालध्वज रथ और बहन सुभद्रा का देवदलन रथ पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक और श्रीमंदिर के विधि-विधानों के आधार पर निर्मित होते हैं। रथ निर्माण कार्य में कुल 205 प्रकार के अलग-अलग सेवायत सहयोग देते हैं। 2015 के रथनिर्माण के लिए पर्याप्त काष्ठखण्ड की व्यवस्था समय पूर्व हो चुकी थी।

बड़े भाई बलभद्रजी का रथ: तालध्वज रथ

यह रथ महाप्रभु जगन्नाथ के बड़े भाई बलभद्र का रथ है। इसे बहलध्वज भी कहते हैं। इसकी ऊँचाई 44 फीट है। इसमें 14 चक्के लगे होते हैं। इसमें 763 काष्ठ खण्डों का प्रयोग किया जाता है। इस रथ के सारथि का नाम मातली तथा रक्षक का नाम- वासुदेव है। इस पर लगे पताके का नाम उन्नानी है। इस रथ के नवीन परिधान का रंग लाल-हरा होता है। इसके घोड़ों का नाम- तीव्र, घोर, दीर्घाश्रम और स्वर्णनाभ

है। घोड़ों का रंग काला होता है। रस्से का नाम बासुकी है। पार्श्व देवों के नाम- गणेश, कार्तिकेय, सर्वमंगला, प्रलंबरी, हतयुधा, मृत्युंजय, नतंभरा, मुक्तेश्वर और शेशादेव है।

देवी सुभद्राजी का रथ: देवदलन रथ

यह रथ देवी सुभद्रा का है। देवदलन को दर्पदलन या पद्मध्वज भी कहते हैं। इसकी ऊँचाई 43 फीट होती है। इसमें 593 काष्ठ खण्डों का प्रयोग किया जाता है। इसमें लगे नवीन परिधान का रंग लाल-काला होता है। इसमें 12 चक्के होते हैं। इसके सारथि का नाम अर्जुन तथा रक्षक का नाम जयदुर्गा है। इस पर लगे पताके का नाम नदम्बिका है। इसके चार घोड़ों के नाम- रोचिका, मोचिका, जीत और अपराजिता है। घोड़ों का रंग भूरा होता है। इसके रस्से का नाम स्वर्णचूड़ है। इसकी नौ पार्श्व देवियाँ होती हैं- चंडी, चमुंडी, उगतारा, शुलीदुर्गा, वराही श्यामाकाली, मंगला और विमला है।

भगवान जगन्नाथजी का रथ : नन्दिघोष रथ

यह रथ महाप्रभु जगन्नाथ का रथ है। इसकी ऊँचाई 45 फीट है। इसमें 16 चक्के लगे होते हैं। इसके निर्माण में 832 काष्ठ खण्डों का इस्तेमाल किया जाता है। रथ पर लाल-पीला नवीन परिधान होता है। इस पर लगे पताके का नाम त्रैलोक्यमोहिनी होता है। इसके सारथि है- दारुक तथा रक्षक है- गरुड़। इसमें चार घोड़े- शंख, बलाहक, सुस्वेत और हरिदाशंव होते हैं। घोड़ों का रंग सफेद होता है। ऐसा बताया जाता है कि इस रथ को इन्द्र ने

उपहार स्वरूप प्रदान किया था। इसके रस्से का नाम शंखचूड़ है। इसके पार्श्व देवों के नाम- वाराह, गोबर्धन, कृष्ण, गोपीकृष्ण, नरसिंह, राम, नारायण, त्रिविक्रम, हनुमान और रुद्र हैं।

रथयात्रा पर निकलने के रास्ते में जगन्नाथजी अपनी मौसी माँ के घर, अर्द्धासनी मंदिर से अपना प्रिय भोजन पूड़ापीठा ग्रहण करते हैं। लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित गुण्डिचा मंदिर तक इन रथों को खींचकर लाया जाता है और देव विग्रहों को पहण्डी विजय कराकर गुण्डिचा मंदिर में सात दिनों तक विराजमान कराया जाता है। श्रीमंदिर की रीति-नीति की तरह ही विग्रहों की वहाँ पर पूजा-अर्चना की जाती है और उन्हें भोग आदि निवेदित किया जाता है।

इधर श्रीमंदिर में नाराज अकेली लक्ष्मीजी पाँचवें दिन गुण्डिचा मंदिर आती हैं लेकिन गुण्डिचा मंदिर में सेवायत उन्हें जगन्नाथजी से मिलने से रोक देते हैं। क्रोधित होकर लक्ष्मीजी गुण्डिचा मंदिर के सामने खड़े जगन्नाथजी के नन्दिघोष रथ के कुछ हिस्सों को तोड़कर चली आती हैं। इसे हेरापंचमी भी कहते हैं।

रथयात्रा

आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा को नवनिर्मित सुसज्जित रथों को जगन्नाथ मंदिर के पूर्व महाद्वार, सिंहद्वार और जो धर्म का प्रतीक माना जाता है उसके सामने लाकर खड़ा किया जाता है, उनकी पूजा की जाती है। रथयात्रा के दिन प्रात:काल तीनों देव विग्रहों को पहण्डी विजय के साथ उनके अपने-अपने रथ पर आरूढ़ कराया जाता है। जगन्नाथजी के प्रथम सेवक पुरी के गजपति महाराज श्री दिव्यसिंहदेवजी तीनों ही रथों पर छेरा पहंरा करते हैं। चंदन मिश्रित जल छिड़कते

चंदन यात्रा जगन्नाथजी की मानवीय लीला का एक जीवंत रूप है।

हैं। इसके बाद रथयात्रा शुरू होती है। रथों को उनके सारथि और घोड़ों के साथ जोड़ा जाता है और 'जय जगन्नाथ!' की हर्ष ध्वनि के साथ रथयात्रा शुरू होती है। सबसे आगे बड़े भाई बलभद्रजी का रथ तालध्वज चलता है। उसके बाद छोटी बहन देवी सुभद्राजी का देवदलन रथ चलता है और अंत में संसार के स्वामी, जगत के नाथ, श्री श्री जगन्नाथजी का रथ नन्दिघोष चलता है। भारतीय सनातनी परंपरानुसार किसी यात्रा पर सबसे पहले बड़े भाई, उसके बाद छोटी बहन और अंत में स्वयं चलने की परंपरा है।

बाहुड़ा यात्रा

बाहुड़ा यात्रा को वापसी यात्रा भी कहते हैं और यह यात्रा ठीक इसी प्रकार तमाम रीति-नीति पूर्वक पहण्डी विजय कराकर, छेरापंहरा के उपरांत तीनों रथों के घोड़ों को रथ से जोड़कर बाहुड़ा यात्रा शुरु होती है। तीन किलोमीटर पर अवस्थित श्रीमंदिर के सिंहद्वार के सामने लाकर तीनों रथों को रखा जाता है। गौरतलब है कि वहाँ पर तीनों विग्रहों को स्वर्ण वेष से अलंकृत किया जाता है जिसे देखने के लिए लाखों श्रद्धालुओं की अपार भीड़ उमड़ पड़ती है। कहते हैं कि श्रीमंदिर से लक्ष्मीजी निकलती है और सिंहद्वार के सामने जगन्नाथजी और लक्ष्मीजी के बीच नोंक-झोक होती है और अंत में, लक्ष्मीजी की अनुमति के उपरांत ही जगन्नाथजी अपने श्रीमंदिर के रत्नवेदी पर विराजमान होते हैं।

पिछले लगभग 20 सालों से दूरदर्शन रथयात्रा का सीधा प्रसारण करता आ रहा है और 18 जुलाई 2015 को भी रथयात्रा का सीधा प्रसारण पुरी धाम से दूरदर्शन इस साल भी कर रहा है जिसकी जानकारी दूरदर्शन केंद्र भुवनेश्वर के डी.डी.जी. श्री बैकुण्ठ पाणिग्राही ने दी है।

''दारुब्रह्म जगन्नाथो भगवान् पुरुषोत्तमे।
क्षेत्रे नीलाचले क्षारार्णवतीरे विराजते॥
महाविभूतिमान् राज्यमौत्कलं पालयन् स्वयम्।
व्यंजयन् निजमाहात्म्यं सदा सेवकवत्सलः॥''

जय जगन्नाथ!

बलभद्र जी के रथ के घोड़ों का नाम- तीव्र, घोर, दीर्घाश्रम और स्वर्णनाभ है।

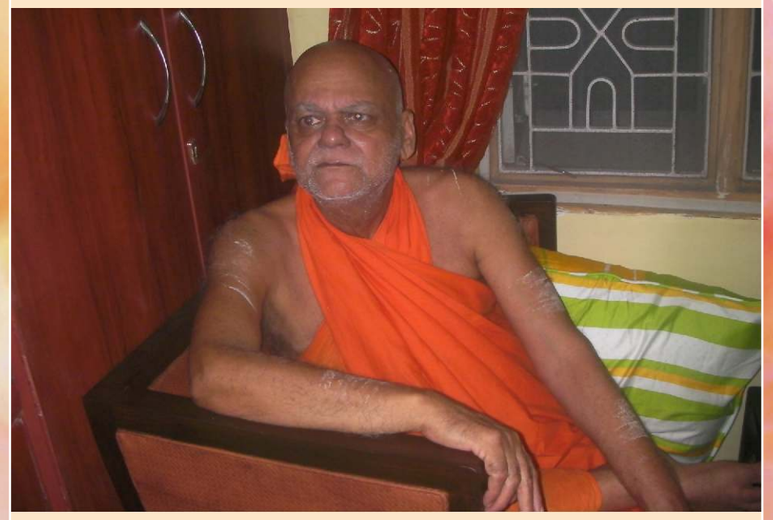

पंचरात्र महोत्सव 2012

भारत के अन्यतम धाम श्री पुरी धाम में 9 फरवरी को सायंकाल श्रद्धाबाली पवित्रतम स्थल पर जहाँ पर राजा इद्रद्युम्न ने अश्वमेध यज्ञ किया था, वहीं पर 'श्री जगन्नाथ पंचरात्र संगोष्ठी' का विधिवत उद्घाटन पुरी के शंकराचार्य जगतगुरु स्वामी निश्चलानंद सरस्वती जी महाराज ने किया। वहाँ पर 9 फरवरी, 2012 से लेकर 14 फरवरी, 2012 तक देश-विदेश के हजारों साधु-संतों का दुर्लभ समागम हुआ। देश-विदेश के लगभग 2000 साधु-संत ने उस संगोष्ठि में हिस्सा लिया और अपने अपने विचार श्रीजगन्नाथ तत्व एवं मीमांशा पर दिया। गौरतलब है कि जब से श्रीमंदिर का निर्माण पुरी धाम में हुआ है तब से श्रीमंदिर की पूजा, रीति-नीति एवं अनेकानेक पर्व-त्यौहार जिनमें रथयात्रा आदि के आयोजन का संबंध गोबर्द्धन मठाधीश व पुरी के शंकराचार्य श्री श्री निश्चलानंद सरस्वती जी ही करते हैं। ऐसे में यह ज्ञातव्य हो कि पुरी के शंकराचार्य जगतगुरु स्वामी निश्चलानंद सरस्वती जी महाराज ओडिशा के संस्कृति पुरुष के रुप में पूरे

देवी सुभद्रा के रथ के घोड़ों के नाम- रोचिका, मोचिका, जीत और अपराजिता है।

ओडिशा के साथ-साथ पूरे भारत में जा-जाकर श्रीजगन्नाथ संस्कृति का प्रचार-प्रसार करते हैं। पिछले कई सालों से पुरी धाम के महोदधि की सायंकालीन आरती का प्रावधान अनवरत जगतगुरु ने आरंभ किया है। उनका यह मानना है कि जिस देश में अनादिकाल से साधु-महात्माओं का सम्मान होता आ रहा है उस देश और खासकर जगन्नाथजी के देश ओडिशा में साधु-महात्माओं का आदर सदा होना चाहिए। उनके कल्याण का काम होना चाहिए। भगवान जगन्नाथ की सेवा से जुड़े सभी मठों के जीर्णोद्धार की कामना रखने वाले पुरी के शंकराचार्य जगतगुरु स्वामी निश्चलानंद सरस्वती जी महाराज के गोवर्द्धन मठ का जीर्णोद्धार की भी नितांत आवश्यकता है। ऐसे में जगन्नाथ सेवा ट्रस्ट कोलकाता एवं श्रीमंदिर प्रशासन पुरी धाम के साथ-साथ समस्त जगन्नाथ भक्तों को पुरी धाम के समस्त मंदिरों एवं मठों की देखरेख, सुरक्षा एवं उनके लिए उत्तम व्यवस्था की आवश्यकता है। इस 6 दिवसीय सम्मेलन में देश-विदेश के हजारों साधु-महात्माओं का अभूतपूर्व समागम हुआ और स्कन्द पुराण में वर्णित श्री जगन्नाथजी की निर्धारित पूजा आदि जगन्नाथ संस्कृति के शीर्षस्थ उपदेशकों एवं प्रचारकों द्वारा दिया गया। साथ ही साथ यह भी सुनिश्चित किया गया कि श्रीमद्भागवत कथा की तरह ही श्रीजगन्नाथजी की कथा 7 दिवसीय और 15 दिवसीय महापरायण देश-विदेशों में आयोजित किया जाय, जिसके माध्यम से जगन्नाथ संस्कृति का प्रचार-प्रसार पौराणिक एवं श्रीमंदिर प्रशासन पुरी धाम की रीति-नीति से पूरे विश्व में आयोजित किया जा सके। यह भी सुनिश्चित किया गया कि श्री जगन्नाथजी की पूजा

जगन्नाथ जी के रथ के घोड़ों का नाम- शंख, बलाहक, सुस्वेत और हरिदाशंव है।

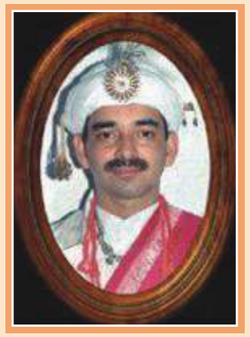

विधि पुरी धाम की तरह ही पूरे विश्व में आयोजित हो, साथ ही साथ महाप्रभु की विश्व प्रसिद्ध रथयात्रा, बाहुड़ा यात्रा और सोना वेश आदि भी पुरी धाम की तरह ही आयोजित हों।

श्री जगन्नाथ मंदिर प्रशासन, पुरी धाम के सौजन्य से श्री जगन्नाथ पंचरात्र: 2012 का हुआ भव्य आयोजन 6 दिवसीय आयोजन दिनांक- 9 फरवरी, 2012 से दिनांक 14 फरवरी, 2012 तक श्रद्धाबाली, गुण्डीचा मंदिर पुरी धाम में हुआ, जिसमें देश-विदेश के अनेक जगन्नाथ मंदिरों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया।

सहयोगीजन:

1. पुरी धाम के शंकराचार्य पूज्य श्री श्री निश्चलानंद सरस्वती जी
2. पुरी के गजपति महाराज श्री श्री दिव्यसिंहदेवजी
3. पूज्य स्वामी निर्लिप्तानंद सरस्वती; 4. पूज्य बाबा चैतन्य चरण दास
5. पूज्य बाबा सच्चिदानंद दास; 6. प्रो. डॉ. आलेख चरण सारंगी
7. पूज्य स्वामी परमहंस प्रज्ञानंद दास; 8. पूज्य स्वामी माधवानंद सरस्वती
9. पूज्य स्वामी निगमानंद सरस्वती; 10. पूज्य बाबा किशोरी चरण दास
11. पूज्य स्वामी परिसुधानंद; 12. पूज्य स्वामी शिवचितानंद
13. पूज्य स्वामी धर्मप्रकाशानंद; 14. पूज्य स्वामी असीमानंद सरस्वती
15. श्री प्रदीप्त कुमार महापात्र, मुख्यप्रशासक, पुरी श्रीमंदिर
16. प्रो. डा/. नीलकण्ठ पति

मुख्य यजमान: श्री सुरेंद्र कुमार डालमिया

पुरुषोत्तम मास के पुरुषोत्तम क्षेत्र में पुरुषोत्तम महाप्रभु जगन्नाथ का पंचरात्र महोत्सव 14 जुलाई 2015 से

5 अप्रैल को अनन्य जगन्नाथभक्त श्री सुरेन्द्र कुमार डालमिया के शहीद नगर भुवनेश्वर स्थित कार्यालय के सभागार में पुरुषोत्तम मास के पुरुषोत्तम क्षेत्र में पुरुषोत्तम महाप्रभु जगन्नाथ के पंचरात्र महोत्सव के अति भव्य आयोजन से संबंधित जगन्नाथ भक्तों की पहली बैठक बुलाई गई, जिसमें गोवर्द्धन पीठ परिषद के सचिव श्री प्रशांत आचार्य, संयुक्त सचिव श्री अशोक पाण्डेय, जगन्नाथ भक्त श्री जगदीश मिश्र, श्री सतप्रेम नंद, श्री पी महंती, श्री प्रफुल्ल कुमार बोइतिया, श्री संग्रामजीत सिंह पाढ़ी, श्री नथमल डालमिया, श्री सुरेन्द्र कुमार डालमिया, श्री पवन डालमिया, श्री विजय डालमिया, श्री विकाश, श्री विकाश डालमिया, श्रीमती लता डालमिया, श्री संजय कुमार साहनी एवं आयोजन के मुख्य पंडित श्री सूर्यनारायण दास ने हिस्सा लिया। इस महोत्सव के मुख्य यजमान श्री सुरेन्द्र कुमार डालमिया ने सदन को यह जानकारी दी कि स्कन्द पुराण के उत्कल खण्ड में वर्णित श्री पुरी धाम एवं श्री जगन्नाथ महात्म्य कथा को दिनाँक 14 जुलाई सायंकाल से लेकर 19 जुलाई तक पुरी के भक्त

निवास में यह पंचरात्र महोत्सव आयोजित होगा, जिसमें प्रतिदिन पूजा-पाठ, नावाह्न पारायण के साथ-साथ सायंकाल में प्रवचन आदि का कार्यक्रम होगा। इस महोत्सव के आयोजन से संबंधित जानकारी जगतगुरु परमपाद स्वामी निश्चलानन्दजी सरस्वती महाराज एवं पुरी के गजपति महाराज श्री दिव्यसिंहदेवजी महाराज को दी जा चुकी है। गौरतलब है कि पुरी का भक्तनिवास पुरी के गजपति महाराज के राजमहल श्रीनाहर के समीप है। सूचनानुसार प्रतिदिन इस आयोजन के मुख्य यजमान श्री सुरेन्द्र कुमार डालमिया सपत्नीक पूजा पर बैठेंगे, जिसमें कुल 11 आचार्यों का पूर्ण सहयोग होगा जो प्रतिदिन पूजा-पाठ एवं पारायण आदि कराएंगे। बैठक में सभी ने अपने-अपने मत रखे और महोत्सव को पूर्णरुपेण सफल बनाने से संबंधित सभी बिन्दुओं पर विचार-विमर्श के उपरांत एक आम सहमति बनी, उसके उपरांत महाप्रसाद सेवन के साथ यह पहली बैठक संपन्न हो गई।

नवकलेवर महाप्रभु जगन्नाथ के लौकिक स्वरूप की अलौकिक लीला है।

'आर्ट ऑफ गीविंग': अनन्य जगन्नाथभक्त प्रोफेसर डॉ. अच्युत सामंत का जीवन दर्शन

बात 1969 की है। एक सुबह करीब 5.00 बजे चार साल का एक शिशु अपनी आँखों के सामने अपने परिवार के सभी सदस्यों को रोते हुए देखता है, लेकिन वह यह नहीं समझ पाता है कि सभी लोग क्यों रो रहे हैं? बालक निस्तब्ध, हैरान, परेशान और लोगों को रोते हुए देखकर शोक संतप्त हो जाता है। बाद में उसको पता चलता है कि उसके पिताजी का निधन हो चुका है। अबोध बालक यह नहीं समझ पाता है कि इस दुनिया में जो जन्म लेता है, वह एक न एक दिन अवश्य मरता है। इस शिशु के पिताजी की असामयिक मृत्यु एक दु:खद रेल दुर्घटना में हो गई थी। घर में उसकी विधवा माँ और उसके कुल 3-3 भाई-बहन। घर का सबसे छोटा सदस्य मात्र एक माह का था, जबकि सबसे बड़ा सदस्य 17 साल का। उसके पिताजी एक कारखाने में एक साधारण कर्मचारी थे, जो अपने पीछे परिवार के कुल 8 सदस्यों के भरण-पोषण के लिए कुछ भी जमा पूँजी छोड़कर नहीं गये थे। वह शिशु ओडिशा प्रदेश के एक दूर-दराज गाँव के एक निहायत गरीब परिवार में पला। जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों ने उसे पल-पल जीना सिखाया। मात्र पाँच साल की उम्र में अपने परिवार के भरण-पोषण का वह शिशु एकमात्र सहारा बना। अपने गाँव में यहाँ-वहाँ स्वेच्छापूर्वक कुछ शारीरिक श्रम कर, अर्थोपार्जन कर वह अपनी विधवा माँ की सहायता में लग गया। अपनी मेहनत की कमाई से वह अपनी विधवा माँ की आँखों का आँसू पोंछा। अपनी छोटी बहन का सहारा बना। सात साल की उम्र में ही वह बालक कमाऊ पुत्र बन गया। प्रतिदिन वह अपने पसीने की कमाई का

नवकलेवर जीवन दर्शन, आत्मा और परमात्मा के एकाकार स्वरूप का साक्षात उदाहरण है।

एक रुपया स्वयं रखता और बाकी अपने चार सहपाठियों को उनके नाश्ता-चाय के लिए दे देता। वह अपने गाँव के नजदीक के बाजार से सब्जी और रोजमर्रे की सामग्री लाने में अक्सर अपने गाँव वालों की भी सहायता करता।

कालांतर में बालक बड़ा हुआ। भुवनेश्वर के उत्कल विश्वविद्यालय में जब वह रसायन विज्ञान में एम. एससी. कर रहा था, एक दिन उसके सबसे बड़े भाई ने उसे कॉलेज पिकनिक पर जाने के लिए 300 रुपये दिये, उसने वह रुपये अपने एक ऐसे साथी को दे दिये जो पिकनिक पर जाना तो चाहता था, लेकिन उसके पास पैसे नहीं थे। 'आर्ट ऑफ गीविंग' में निपुण उस युवा ने उत्कल विश्वविद्यालय भुवनेश्वर से रसायन विज्ञान में एम. एससी. की। एक कॉलेज में व्याख्याता की नौकरी की। अपने व्यक्तिगत सुखों का त्यागकर अब वह युवा अपने जरूरतमंद सहपाठियों को आर्थिक सहायता देने एवं अपने परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण के लिए पढ़ाने के साथ-साथ प्राइवेट ट्यूशन भी करने लगा। कहते हैं कि समय परिवर्तनशील है। वह दूरदर्शी युवा अपनी कुल जमा पूँजी मात्र 5,000 रुपये से 1992-1993 में एक किराये के मकान में अपनी दो संस्थाएँ कीट-कीस खोल लीं। आज उस उत्साही और त्यागी युवा की दो संस्थाएँ एक कीट तकनीकी विश्वविद्यालय है, जहाँ पर आज लगभग 25,000 छात्र भारत समेत पूरे विश्व से आकर पढ़ते हैं। वहीं 'कीस' दुनिया का सबसे बड़ा आदिवासी आवासीय विद्यालय बन चुका है, जहाँ पर आज लगभग 25,000 आदिवासी बच्चे समस्त अत्याधुनिक आवासीय सुविधाओं का नि:शुल्क लाभ उठाकर मौज के साथ रहते हैं और के.जी. से पी.जी. तक नि:शुल्क पढ़ते हैं। कीस का आज लक्ष्य है 2020 तक भारत के कुल 10 मिलियन आदिवासी बच्चों को पूरी तरह से शिक्षित बनाना।

जो अनाथ बालक स्वयं घोर

श्रीजगन्नाथ जी का नवकलेवर पुण्यभूमि भारत की सांस्कृतिक आस्था का प्रमाण है।

आर्थिक संकटों में पला-बढ़ा, उसने अपने गाँव कलरबंक को भी भारत का एक आदर्श गाँव बनाया, जहाँ पर शहर की तमाम सुविधाएँ उपलब्ध हैं। उस उत्साही विदेह युवा ने आज ओडिशा की कला, संस्कृति, फिल्म, साहित्य, अध्यात्म और जीवन के अनेकानेक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों की वह श्रीवृद्धि की है जो अकेले किसी के लिए असंभव है।

वह कर्मयोगी युवा आज प्रति माह अपने कुल 40 गरीब दोस्तों को रोजगार दिलाने में सहायता करता है जबकि प्रतिमाह अपने अन्य 40 साथियों को कीट-कीस में नौकरी देता है। जिस व्यक्ति ने सबके लिए सब कुछ किया, वह स्वयं भुवनेश्वर में एक दो कमरे के किराये के मकान में रहता है, वह भी एक साधारण व्यक्ति की तरह। उसके नाम पर न कोई बैंक खाता है और न ही कोई बैंक बैलेंस। वह आज भी बैचलर लाइफ जी रहा है। उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है बिना किसी जाति, लिंग, धर्म आदि के भेद-भाव के बिना हजारों, लाखों गरीब और असहाय बच्चों की आजीवन आर्थिक सहायता करना। उसका अपना एकमात्र शौक है गरीब, लाचार और बेसहारा बच्चों को साक्षर बनाकर, पढ़ा-लिखाकर उनके चेहरे पर सदा मुस्कुराहट लाना। वह व्यक्ति 'आर्ट ऑफ गीविंग' में विश्वास रखता है, जिसका वह आजीवन प्रचारक 17 मई, 2013 से सतत कर रहा है। असाधारण व्यक्तित्व के धनी सादगी से परिपूर्ण उस महामानव को 'आर्ट ऑफ गीविंग' विरासत में मिली है, जिसे वह मौन रूप में अपने बाल्यकाल में सीखा, अपनाया। जिसका पारदर्शी व्यक्तित्व पूरे विश्व के लिए अनुकरणीय एवं वंदनीय आज बन चुका है, वह व्यक्ति और कोई नहीं **कीट-कीस के संस्थापक डॉ. अच्युत सामंत** हैं। दुनिया आज डॉ. अच्युत सामंत को एक दूरदर्शी शिक्षाविद् और विश्व आदिवासी समुदाय के जीवित मसीहा के रूप में जानती है। भुवनेश्वर कीट-कीस के संस्थापक के साथ-साथ कीस फाउण्डेशन इंडिया और कीस फाउंडेशन यूनाटेड किंगडम के आजीवन संस्थापक हैं डॉ. अच्युत सामंत, जिनके जीवन दर्शन 'आर्ट ऑफ गीविंग' को पूरा विश्व अपनाने लगा है।

– अशोक पाण्डेय

विग्रहों का नया शरीर धारण करना, आत्मा और शरीर के संबंध और पुनर्जन्म के प्रतीक हैं।

तीन क्षणिकाएँ

(1)

नारद की बात मान जगन्नाथ प्रभुजी
कलियुग में अवतार ले लिये,
बलभद्रजी-सुभद्राजी को साथ ले लिये।
आदेश आपका पाकर इन्द्रद्युम्न आ गये,
हे दारुब्रह्म आप यह विग्रह रूप पा लिये।

(2)

हे दारुब्रह्म स्वामी, नयनपथगामी,
आपकी शरण चाहूँ।
विद्यापति, जयदेव, चैतन्य प्रभु, रामानुजाचार्य सम
नानक, कबीर, तुलसी सम
इस भक्त की दासता को स्वीकार कर

इसे भी अपना लें,
मैं तेरी शरण माँगूँ।

(3)

जय जन उत्कल, गौरव भारत,
शक्ति तेरी अपार।
जाति-धर्म का भेद मिटाया,
चण्डाशोक को धर्माशोक बनाया,
आतिथ्य-सत्कार व पखाल संस्कृति को महान बनाया,
है शक्ति तेरी अपार ।
कलिंग भूमि को स्वर्ग बनाया,
धवल-धाम श्रीमंदिर बनवाया
ओडिशा को उत्कृष्ट कला प्रदेश बनाया।
तेरी शक्ति है अपार।
जात्रा-पाला, रज-कुमारपूर्णिमा है
ओडिशा की एक अलग पहचान,
तेरी शक्ति है अपार।
ओडिशी-संबलपुरी को लोकप्रिय बनाया,
अनन्य जगन्नाथ भक्त अच्युत सामंत को
अनाथ बालक से विश्व का महान शिक्षाविद् बनाया,
यही तेरी पहचान।
शक्ति तेरी अपार, है तेरी शक्ति अपार।

- अशोक पाण्डेय

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. Sidelights on History and culture of Orissa – Edited by M.N. Das
2. The Cult and Culture of Lord Jagannath by Daityari Panda, Sarat Chandra Panigrahi
3. Shri Jagannath Puri Past & Present by G.M. Tripathy
4. Lord Jagannath in Indian Religious life by B. Mullick, ed. Dr. H.C. Das
5. Legends of Jagannath Puri by R.K. Das
6. Indian Culture and Cult of Jagannath by Late Pandit Binayak Mishra
7. Lord Jagannath by Surendra Mohanty
8. A Glimpse into Oriya Literature by Chittaranjan Das
9. Conservation of Lord Jagannath Temple, Puri by Archaeological Survey of India, Bhubaneshwar Circle
10. Orissa Review
11. Jagannath Puri by Sri Balaram Mishra
12. A brief look at Sri Jagannath Temple, Puri by Mohini Mohan Tripathy
13. Our Lord by Prof. K.C. Pal
14. Orissa by Hotel & Restaurants Association of Orissa
15. Hidden Treasure of Vastu Shilpa Shastra and Indian Traditions, by Darebal Muralidhar Rao
16. Jagannath Puri, Published by Sir Jagannath Temple Managing Committee, Puri
17. Sri Jagannath Temple – At a Glance, by Prof. Gopal Chandra Tripathy
18. The Car Festival, Puri, 1990 – I & PR Deptt., Govt. of Orissa
19. श्री जगन्नाथ पुरी – श्री जगन्नाथ मंदिर परिचालना समिति, पुरी द्वारा प्रकाशित
20. हमारे पूज्य तीर्थ – राजीव
21. भक्त कथाएँ – राजेन्द्र शर्मा
22. गगनांचल – भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद, नई दिल्ली
23. भारतीय साहित्य कोश – संपादक, डॉ. नगेन्द्र
24. श्रीक्षेत्र: श्री जगन्नाथ (ओड़िआ) – संकलन, डॉ. ब्रजमोहन महान्ति एवं श्री सुभाष चन्द्र महान्ति
25. युगे युगे नवकलेवर (ओड़िआ) – डॉ. सदानन्द चौधुरी
26. नवकलेवर: विस्तृत विचार (ओड़िआ) – श्री शुकदेव महान्ति
27. श्रीजगन्नाथङ्कर नवकलेवर विधान (ओड़िआ) – डॉ. पूर्णचंद्र मिश्र
28. जय जगदीश हरे – डॉ. शंकर लाल पुरोहित
29. भारतीय संस्कृति को उड़ीसा की देन – डॉ. नत्थूलाल गुप्त, डॉ. शंकर लाल पुरोहित एवं अशोक पाण्डेय
30. स्कन्दपुराण – गीताप्रेस, गोरखपुर

पुनर्जन्म और आत्मा की अमरता का संदेश श्रीजगन्नाथ की परम्परा में समाहित है।

लेखक परिचय

अशोक पाण्डेय

आजीवन जगन्नाथ भक्त

1 जनवरी, 1952 में बिहार प्रांत के बक्सर जिले के 'पाण्डेय भरवली' नामक गाँव के रहने वाले अशोक पाण्डेय, 2013 दिसंबर में केन्द्रीय विद्यालय संगठन, नई दिल्ली की लगभग 32 साल की नियमित सेवाएँ संपन्न कर केन्द्रीय विद्यालय नं. 6, पोखरीपुट (भुवनेश्वर) से प्रिंसिपल प्राचार्य के पद से सेवानिवृत्त होकर ओडिशा की राजधानी भुवनेश्वर श्रीरामविहार अपार्टमेंट, ए-203 में स्थाई रूप से रह रहे हैं। आप पुरी धाम के गोवर्द्धन पीठ के पीठाधीश्वर एवं 145वें शंकराचार्य जगतगुरु परमपाद स्वामी निश्चलानन्दजी सरस्वती महाराज के संयुक्त सचिव हैं। आपकी उल्लेखनीय एवं असाधारण शैक्षिक सेवाओं के लिए आपको 2006 में राष्ट्रपति पुरस्कार समेत अनेक पुरस्कार मिल चुके हैं। आप 1999 से लेकर 2002 तक केन्द्रीय विद्यालय मॉस्को में हिन्दी पी.जी.टी. और जवाहरलाल नेहरू कल्चरल सेंटर, भारतीय दूतावास मॉस्को में हिन्दी व्याख्याता के रूप में काम कर चुके हैं। आपके आजीवन ओडिशा, भुवनेश्वर में रहने के मात्र दो ही आधार हैं- एक तो आप एक सच्चे जगन्नाथ भक्त हैं जो आजीवन जगन्नाथजी के ऊपर हिन्दी में किताब लिखना चाहते हैं और दूसरा यह कि आप के जीवन के प्रेरणास्रोत भुवनेश्वर कीट-कीस और कलिंग टेलीविजन के संस्थापक प्रो. डॉ. अच्युत सामंत हैं जिनके विदेह नि:स्वार्थ जीवन को अपनी हिन्दी रचनाओं के माध्यम से समस्त हिन्दी-जगत को अवगत कराना चाहते हैं जो वास्तव में अनन्य जगन्नाथ भक्त हैं।

हिन्दी में आपकी प्रकाशित रचनाएँ

1. रामराज्य, 2. नवकलेवर और रथयात्रा, 3. महाप्रभु जगन्नाथ, 4. भारतीय संस्कृति को ओडिशा की देन, 5. महाप्रसाद, 6. जगन्नाथजी के विभिन्न वेश
7. अनन्य जगन्नाथभक्त : प्रोफेसर डॉ. अच्युत सामंत

सम्पर्क-सूत्र: 08895267920 Website: www.mahaprabhu.in

ISBN 819037075-8

मूल्यः ₹ 50/- मात्र